सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं

उपदेश एवं पत्र

लेखक :

श्री १००८ स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक :

श्रीमती खुशां देवी

वैदिक भक्ति साधन आश्रम कमरां नं० ३१,
आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

प्राप्ति स्थान :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

चतुर्थ संस्करण ११००   मूल्य : दस रुपये

सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं

उपदेश एवं पत्र
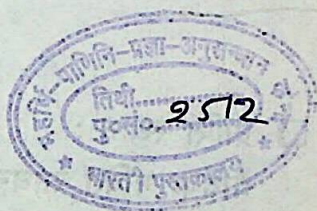
श्री १००८ स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज

प्राप्ति स्थान :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

□ प्रकाशक :
श्रीमती खुशां देवी
वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
कमरा नं० ३१
आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

□ प्राप्ति स्थान :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर, रोहतक (हरयाणा)

□ १ जुलाई, १९९८

□ मुद्रक
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस
गोहानामार्ग, रोहतक—१२४००१

फोन नं० ०१२६२—४६८७४

प्रकाशक का धन्यवाद

सौम्य सन्त की प्रार्थना व उपदेश यज्ञ मण्डली यज्ञ–भवन जवाहर नगर दिल्ली में प्रति सोमवार के सत्संग में तथा अन्य विशेष चौमासा के पारिवारिक वेदपाठ में पढ़ी जाती है। समाप्त होने से श्रीमती खुशां देवी धर्मपत्नी स्व० हिम्मतराम जी छाबड़ा ने इस ग्रन्थ के छपवाने का सारा व्यय अपने ऊपर लिया।

श्रीमती खुशां देवी ने १ जुलाई, १६६८ को यह पुस्तक बड़ी श्रद्धा से स्वाध्याय के लिए जनता को भेंट की।

श्री हिम्मतराम जी छाबड़ा श्री होतुराम जी छाबड़ा की सन्तान थे। आप पाकिस्तान में किशनपुरा जलालाबाद जिला मुजफ्फरगढ़ के निवासी थे। धार्मिक प्रवृत्ति श्री छाबड़ा जी में बचपन से ही थी। चूंकि इलाके में गुरुग्रन्थ का पाठ होता था इसलिए आप को भी कुछ अंश स्मरण थे।

आठवीं कक्षा पास करके आप भी पिता के साथ काम में जुट गए। १६४२ में आपका विवाह श्रीमती खुशां बाई के साथ होगया। १६४७ में आपने पाकिस्तान को छोड़ करके सब जनता के साथ भारत वर्ष में प्रवेश पाया। आप रोहतक, करनाल आदि शहरों में रहे और स्थिर होकर दिल्ली में श्री लाला लोकनाथ जी के पास १२ वर्ष शीशे के काम पर रहे। आपने अपनी सास जी व

पत्नी के साथ जवाहरनगर, सुभाष नगर में रिहायश रखी। उसके बाद आप चन्द्रावल गली नं० २ में आ बसे और अपनी ही सैन्ट्रल एजेन्सी के नाम से दुकान खोल ली।

आपका सम्बन्ध लाला लोकनाथ जी मालिक जवाहर ग्लास कम्पनी, कुतुब रोड दिल्ली के साथ धार्मिकता के नाते बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। आप लाला जी के साथ महात्मा प्रभुआश्रित जी के दर्शन करने प्रति रविवार को दूर–निकट जाया करते थे। एक बार किरोली (सांपला) रोहतक में महात्मा प्रभुआश्रित जी के अकेले दर्शन करने आये। एक कमरे में महाराज जी समाधि अवस्था में बैठे थे। जब उन्होंने देखा कि एक सांप अपना फन फैलाये बैठा है आप तो घबरा गए पर महाराज जी उसी अवस्था में ही बैठे रहे, सांप उतरकर चला गया। तब से आप को महाराज जी के प्रति अधिक श्रद्धा होगई और यहां सत्संग दानादि में अधिक रुचि ली। रोहतक वैदिक भक्ति साधन आश्रम में आपने तीन गौवें दान में दीं। एक गाय तो ११ नवम्बर को ही आश्रम में दान दी। और १६ नवम्बर मार्गशीर्ष संक्रांति के दिन अपनी धर्मपत्नी को कहा कि तुम यज्ञ की तैयारी करो, मैं अभी स्नान करके आया। कमरे में तेल मलने ही लगे कि उनका हार्ट फेल होगया

और गिर पड़े। पत्नी ने उनकी इन्तजार की तो आश्चर्य में पड़ गई। वह तो सदा के लिए उन्हें छोड़कर चले गए।

लाला लोकनाथ जी ने उसी दिन ही ३ माह का रोहतक आश्रम में मौन व्रत रखा था। इतला मिली और तत्काल आप दिल्ली भागे। श्री लखपति शास्त्री ने संस्कार कराया और १६ नवम्बर को चौथे की रस्म समुदाय भवन जवाहर नगर में की गई। जिसमें उन की धर्मपत्नी ने लाखों रुपया दान किया।

भगवान् ने उन्हें आत्म–विश्वास, धीरज अपनी भक्ति दी थी। बिना किसी सेवा या कष्ट के वह विदा हो गए, परन्तु उनकी पत्नी को इस असह्य दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें। यही परमपिता परमेश्वर के चरणों में प्रार्थना है।

श्री लखपति शास्त्री की प्रार्थना पर उन्होंने ही म० प्रभुआश्रित व स्वामी विज्ञानानन्द नेत्र चिकित्सालय के लिए दो पलंग तथा सौम्य सन्त की प्रार्थना व उपदेश स्मृति दिवस के रूप में साधकों को भेंट की। भगवान् उस पवित्रात्मा को सद्गति प्रदान करें और उनकी धर्मपत्नी को इस महान् कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण श्री दीपचन्द, रामधारी जी कीरतपुर बस्सी (बिजनौर) ने छपवाया था, उनका धन्यवाद। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ संस्करण श्रीमती खुशां देवी धर्मपत्नी स्व० हिम्मतराम जी छाबड़ा के सहयोग से छपवाया गया।

प्रकाशन विभाग

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

भूमिका

परमेश्वर के विचित्र कार्यों में एक कार्य जीवों को वाणी प्रदान करना भी है। सभी जीव इसी वाणी के द्वारा अपने हाव—भाव भी प्रकट करते हैं, विनोद भी करते हैं इत्यादि।

आस्तिक भक्त इस वाणी के द्वारा कई प्रकार के कार्य करता है। कठिनतम तप, मधुर सत्य बोलना, ज्ञान दान, दुखियों से सहानुभूति करना, परमेश्वर से प्रार्थना करना।

प्रार्थना कई सज्जनों ने रट रखी होती है, वह मुहारनी की तरह बोलते हैं। उसे कोई सुनता नहीं एवं स्वयं बोलने वाला भी ग्रामोफोन की तरह बोल जाता है। उसे पता नहीं होता कि क्या उच्चारण कर रहा है। यह बड़ी नीरस सी प्रार्थना होती है, जैसे खानापूरी कर दी गई हो।

विद्वान् भी प्रार्थना करते हैं। किसी वेदमन्त्र को सम्मुख रख बड़ी विद्वत्तापूर्ण सुन्दर भाषा, चुने हुए शब्द धाराप्रवाह बोलते हैं। एक लघु भाषण प्रतीत होता है। कई बार सुननेवाले प्रसन्न होते हैं, और कई बार ऊब

जाते हैं। ऐसी प्रार्थना रोचक तो लगती है, कर्ण–रस आता है, पर यह भी हृदय को स्पर्श नहीं करती। वक्ता का या श्रोताओं का जीवन पलटने की क्षमता इन विद्वत्तापूर्ण प्रार्थनाओं में नहीं होती। अतः प्रार्थना के लक्ष्य की पूर्ति विद्वानों की प्रार्थनाओं द्वारा भी नहीं होती।

भक्तजनों की प्रार्थनाओं के तीन उद्देश्य होते हैं–

१. प्रभुदेव ! जो पर्दे तेरे और मेरे बीच में, मेरी त्रुटियों, पापों, कुकर्मों, कुवासनाओं, कुसंस्कारों द्वारा आ गए हैं और अब मेरी शक्ति से उठाए उठते नहीं उन्हें निज दयालुता से हटा ! पापों से घृणा उत्पन्न कर दे प्रभु, ताकि मैं पतन से बच सकूं।

२. भगवान् का भक्त चाहता है प्रभुदेव ! मेरे साथ तू कोई सम्बन्ध जोड़ ले, जिसकी आड़ में मैं तेरा बन जाऊं और तू मुझे सुलभ हो जाए, तेरे मिलन के लिए मुझे कहीं जाना न पड़े, किसी से आज्ञा लेनी न पड़े, किसी की सिफारिश करवानी न पड़े, सीधा (Direct) सरल सम्बन्ध हो।

३. भगवान् संसार के प्राणियों के दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुर्दिन दूर कीजिए। विश्व को सुखी बनावें, दया

की दृष्टि रखते हुए सब को सद्बुद्धि आस्तिकता प्रदान कीजिए।

इन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर भक्तजन प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना ही उनकी हर बात का आरम्भ होती है और अन्त भी प्रार्थना से होता है। प्रार्थना ही उन का जीवन–आधार होता है। भक्तों की ऐसी प्रार्थनाओं में भी कुछ विशेषताएं और विलक्षणताएं रहती हैं। यथा–(१) प्रार्थना में कोई दिखावा नहीं, दंभ नहीं, भाषा का, व्याकरण का कुछ महत्त्व नहीं परन्तु हृदय के उद्गार वाणी और आंसुओं से निकल रहे होते हैं। वक्ता को किसी व्यक्ति विशेष को सुनाना, रिझाना अभीष्ट नहीं होता, वह तो अपने प्रियतम प्रभु के सम्मुख अपने हृदय की पिटारी खोल दिखा रहा होता है। बिछोड़े और विरह की वेदना विनम्रता से दर्शा रहा होता है, रहम की पुकार करते–करते प्रायः उसे अपनी सुधि भी नहीं रहती।

संसार के लोगों को जहां रोने में दुःख, सिर में पीड़ा होती है–थक जाते हैं वहां भक्तों को रोने में आनन्द की अनुभूति होती है। शरीर और दिमाग हल्के होते प्रतीत होते हैं। कारण कि उनके आंसू भी तो स्वयं भगवान् ही पूछ रहे होते हैं।

२) प्रार्थना की भाषा सरल, सरस, सुमधुर स्पष्ट होती है। विद्वान् जहां सरल बात को क्लिष्ट भाषा में कहकर समझने में कठिन बना देते हैं, वहां भक्तजन गूढ़, कठिन रहस्य की बात को सरलता से कहकर सर्वसाधारण तक सुगमता से पहुंचा देते हैं।

३) सच्चे सन्तों की प्रार्थना, वाणी अथवा मस्तिष्क से नहीं निकल रही होती, वह तो उनके आर्द्र हृदय के अन्तराल से गूंज उठ रही होती है। जिसे यदि कोई सुन पावे तो मन्त्रमुग्ध हो जाए। स्वयं भक्त जन इन प्रार्थनाओं द्वारा अपने कुसंस्कारों को जड़ से खोद निकाल रहे होते हैं और श्रोता–गणों के जीवन को ऐसे पलट देते हैं जैसे वायु सुगमता से कागज को पलट देती है। प्रभाव इतना स्थायी सुदृढ़ पड़ता है कि जो छाप पड़ी वह अमिट होती है।

इसके प्रमाण प्रत्येक भक्ति मार्ग के साधक को अपने जीवन में मिलते हैं। ऐसी ही कुछ प्रार्थनाओं का संग्रह इस लघु–पुस्तिका में किया गया है ताकि प्रार्थना के महत्त्व को समझकर प्रार्थी जन–संमार्ग को प्राप्त करें, करावें।

पुस्तक के दूसरे अध्याय में कुछ पत्र गुरु भाइयों से

लेकर छपवाये जा रहे हैं जो सौम्य सन्त के उपदेश व हित बुद्धि का दिग्दर्शन करावेंगे। यदि जिज्ञासु इन्हीं स्थितियों में होंगे तो उनका मार्ग प्रदर्शन होगा।

लगता ऐसा है कि उनकी दयालु आत्मा हमारी उलझनों को अब भी सुलझा रही है; हमें अपनी बहुमूल्य सत्प्रेरणा प्रदान कर रही है। पाठक जिज्ञासु बनकर लाभ उठावें।

विनीत :

सेवक साधक

ओ३म्

सौम्य सन्त की प्रार्थनाओं की सूची

प्रथम भाग

ओ३म्

सौम्य सन्त के लिखित उपदेशों व पत्रों की सूची

द्वितीय भाग

क्रमांक	लिखित उपदेश एवं पत्र-सूची	पृष्ठ

प्रथम भाग

सौम्य सन्त द्वारा लिखित प्रार्थनायें

ओरम् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
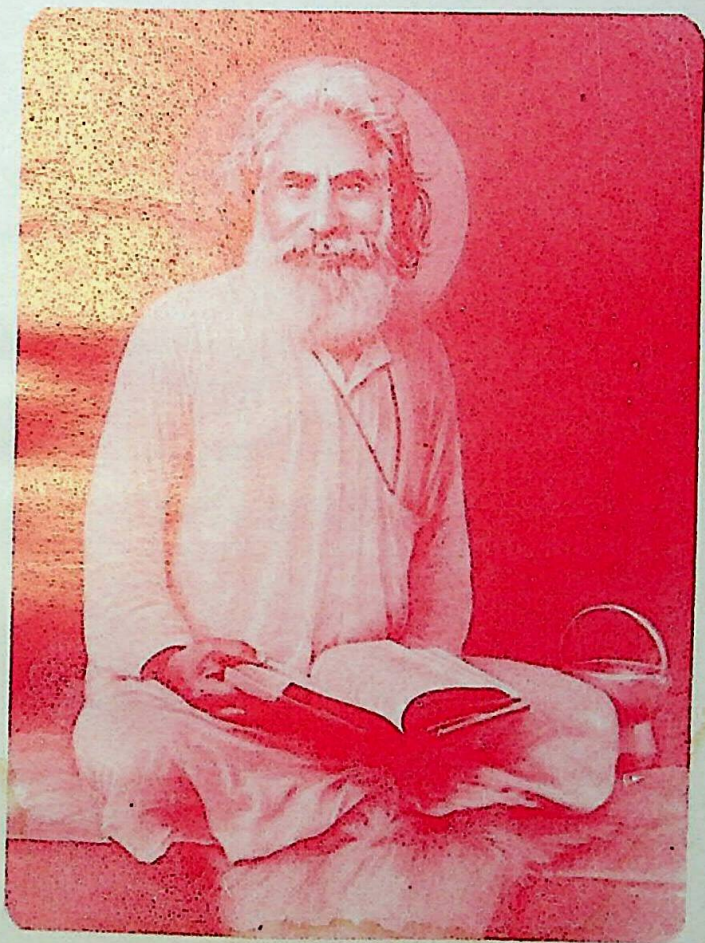
श्री पूज्य स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज

१. याजकों को उत्तम धन, सद्‌बुद्धि, मधुर वाणी प्रदान कीजिए

ओं देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।

यजु० ३०।१

हे प्यारे देव ! गुप्तप्रेरक देव ! यज्ञस्वरूप यज्ञदेव ! सुखदाता प्रकाशकर्त्ता अदृश्य जीवों पर्यन्त सारे संसार में क्रीड़ा करनेवाले चराचर जगत् के उत्पादक सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त तथा सकल सामग्री के दाता प्रभो ! आप कृपा करो। तेरे पैदा किये संसार में तेरी सहनशील धरती माता के ऊपर आज संकट इतना बढ़ रहा है कि हम रहने वाले प्राणी त्राहि माम्–त्राहि माम् कर रहे हैं। तेरे चमक रहे प्रकाश में भी दुःख के शिकार हो रहे हैं। तेरी दी हुई विश्राम देनेवाली रात्रि में भी रो–रोकर पुकार कर रहे हैं। न दिन में चैन है, न रात्रि में आराम। हम में कैसे–कैसे तुझ से भयभीत न होनेवाले मूढ़, निर्लज्ज कुटिल, विद्याविरोधी, छली, कपटी, दंभी, अभिमानी, निर्दयी, दुष्ट इस पृथ्वी को कलंकित कर रहे हैं। हम सबको सुपथ पर लाने के लिए और अपने दोषों को दूर करने के लिए पुकार करते हैं कि यज्ञ और यजन विद्या को

उत्पन्न करो और ऐसे यज्ञ करनेवाले सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन भी उत्पन्न कीजिए। यज्ञ करने वालों के ऐश्वर्य (शारीरिक आत्मिक) के रक्षक उत्पन्न कीजिए।

हे दिव्यगुणयुक्त प्रभो ! गंधयुक्त पृथ्वी और इसके सब पदार्थों के धारणकर्त्ता स्वामी आप स्वयं बुद्धि को विमल करने वाले हैं। आप प्रज्ञास्वरूप हैं इसलिए हम दीन यज्ञ करनेवालों की बुद्धि भी शुद्ध पवित्र कीजिए। आप वेद की भगवती कल्याणी वाणी के स्वामी हैं हमारी वाणी को भी पवित्र कीजिए ताकि जब हम वेद मन्त्र पढ़ें तो वह शुद्ध स्पष्ट सुरीले सवर से युक्त कोमल एवं मधुर प्रतीत हो। हमारी वाणी के अन्दर ऐसा मिठास भर दो और हमारी वाणी को ऐसा स्वादिष्ट बना दो कि सदा मधुर रस से जीवन को तृप्त करती रहे।

२. साधक की चंचलता दूर करो भगवान्

ओं वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्। वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये।। ऋ० ६।६।६

हे प्रभो ! मेरे दोनों कान इधर–उधर भाग रहे हैं और दोनों आंखें भी दूर–दूर जा रही हैं। हृदय में स्थित जो यह ज्ञानरूपी आप की ज्योति है, वह भी मन की चंचलता के कारण बुझीसी जा रही है। अत्यन्त दूर के

विषयों में लगकर यह मेरा मन दूर–दूर विचरण कर रहा है।

हे प्रभो ! चंचल दशा में मैं आपका आश्रित (उपासक) आपसे क्या कहूं और क्या मनन तथा चिन्तन करूं। कैसे मनन करके आत्मसाक्षात् करूं।

प्रभो ! मैं तो तेरा आश्रित हूं। मेरे मार्ग के कूड़ा–करकट आप ही साफ करें जैसे माता–पिता पुत्र के आगे से साफ करते हैं।

३. व्रत आरम्भ की प्रार्थना

हे प्यारे प्रभु देव ! मैं आपकी शुभ प्रेरणा से आपके श्रीचरणों में बैठा रहा हूं, पर तेरी सहायता के बिना कुछ नहीं हो सकता। कोई कार्य नहीं बन सकता। आप ही मेरे उत्तम और सच्चे साथी हो, स्वामी हो, सब व्रत आपकी सहायता से होते हैं। बस मुझे मित्रता के नाते आप की मिन्नत करता हूं कि इस व्रत को सफल बनानें अपने आशीर्वाद का पात्र बनने में सहायता और सहयोग देकर अथवा अपना ही व्रत मान इसे सफल बनावें आपकी देन से ही मेरा जीवन है आपकी शक्तियों का किंचित् अनुभव भी प्राप्त हुआ। आप चाहें तो बड़े–बड़े योद्धाओं को नपुंसक बना दें–चाहें तो दुर्बल पतित से पतित को एकदम निज कृपा का पात्र बना श्रेष्ठ बना दें।

जिस समय के लिए आपने यह मानव चोला अनुदान दिया अब वह शुभ अवसर आया है कि वह पूर्ण सफल आप ही के योग से बने। दयालु देव ! आशीर्वाद दें।

४. प्रभो ! शरणागत के व्रत की रक्षा कीजिए

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि। यजु० १।५

हे व्रतपते ! ज्ञानस्वरूप ! उन्नतिदाता प्रभो ! मैं तेरा आश्रित तेरे १७।३।४६ के आदेश एवं प्रेरणा के पालन के लिए आज से व्रत करने लगा हूं, परन्तु अल्पज्ञता, अज्ञानता और अयोग्यता के कारण असमर्थ हूं, अशक्त हूं। आप की शरण में पड़ा हूं इसे पूर्ण करने का बल, साहस, शक्ति और आश्रय दीजिए। गुप्त प्रेरक प्रभो ! अपनी शुभ प्रेरणाओं से पथ–प्रदर्शन भी करते रहिए। मेरा यह व्रत संकल्प सत्य हो अनृत न हो ताकि मैं सत्य के ग्रहण और अनृत के त्यागने में तेरे सहाय से सदा के लिए शक्तिमान् बन जाऊं और तेरे सत्य–स्वरूप का पुजारी बनकर सत्य के दर्शन कर सकूं। आप कभी अपने आश्रित को नहीं त्यागते। इस बलबूते पर संकल्प किया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मत्सर आदि शत्रुओं ने एक मत्ता (षड्यंत्र) बांधा हुआ है, एक योजना बनाई हुई है। वे गुप्त आक्रमण के अभ्यासी बने हुए हैं। वे सदा ही इसी

ताक में रहते हैं कि जब भी कोई आप से अलग होता है उस पर टूट पड़ते हैं। इसलिए प्रभुदेव ! अपने आश्रित को एक क्षण भी पृथक् न होने दीजिए। आप तो कभी अलग नहीं होते पर हम अल्पज्ञ संसारी जीव प्रलोभनों में फंसे हुए अनेक बार आप से मुख मोड़ दूर हो जाते हैं। जैसे माता अपने नादान शिशु का स्वयं ध्यान रखती है, आप भी मेरी मंगलमयी माता हो और शतक्रतु हो और यह भाव और स्वभाव भी आपने ही संसारी माता से धरा हुआ है। आप ही मेरे पथ की बागडोर संभाले रखिए ताकि मेरा बेड़ा पार हो सके।

हे प्रभो ! तुझ सहयोगी के सहयोग बल से युक्त हुए हम दबाने की कामना करनेवाले काम क्रोध आदि आत्मिक शत्रुओं को प्रति उत्तर दे सकें (दबा सकें) क्योंकि तू हमारा है हम तेरे हैं।

पतित पावन नाम सुनकर मैं शरण तेरी पड़ा।
सफल कर इस नाम को अपना मुझे कर लीजिए।।

५. मौन व्रत में मन का मौन भी अभिप्रेत

प्रभुदेव ! इन काल्पनिक विचारधाराओं से भी सुरक्षित रखे। जब अपनी परीक्षा के लिए हर प्रकार के व्यवहार पत्र व्यवहार के लिए प्रतिबन्ध रखा है तो ये विचारधाराएं भी (चाहे अच्छी हों) जब मैं ऐसी सलाह देने के लिए भी

पत्र नहीं ले दे सकता तो विचार क्यों आवें। हे व्रतपते ! मेरी तो यही निर्बलता है इसी के लिए तो मैंने आपकी शरण पकड़ी है कि आप ही व्रतपति हो आपके ही बल और सहारे से मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सकूंगा। इसलिए नाथ ! आप वसु पिता हो मुझे बचाओ, बसेरा दो और ढांपो। आप शतक्रतु मां हो आप के पास सैकड़ों युक्तियां हैं मेरी रक्षा करो।

६. व्रत साधना के लिए प्रार्थना

हे प्रभु देव ! आज आप से मैं आप की दया से अन्तःप्रेरणा ११–८–६२ के अनुसार अदर्शन मौन व्रंत में बैठ गया हूं। मैं नहीं जानता कि मैं किस प्रकार अपनी अन्तःशक्ति का विकास करूं। मैं आपका आश्रित हूं। सदा मेरी रक्षा और रहनुमाई आप ही करते हो। मैं उतावले में और तुच्छ अहं भाव की शक्ति से प्रेरित होकर एकदम किसी क्षेत्र में कूद पड़ने की न प्रवृत्ति रखता हूं और न सामर्थ्य ! मुझे एक–मात्र तेरा ही भरोसा है !

यह साधना कराने का मार्ग या कार्य मेरा नहीं, आप ही प्रभु देव का है। जब और जैसा आप मेरे प्रभु अथवा महापुरुष मुझे चलाएंगे वैसा तभी मैं चलूंगा।

७. व्रत में सत्यनिष्ठा चाहिए, वरना दिखावा होगा

हे प्रभुदेव ! सबसे कठिन व्रत सत्य का पालन है और यही सत्य पालन ही सब बुराइयों, दोषों से मुक्त करा सकता है। यही सत्यपालन ही तेरी आज्ञाओं का पालन है। यही तेरी सच्ची पूजा है यह पालन सिवाय तेरी निज दया के, मानव से मुश्किल, अति कठिन है। तू चाहे तो यह कठिन से कठिन भी मनुष्य के लिए सरल और सुगम बन जावे। जब भी उपासक या साधक तेरे भक्त को इसके पालन में दिखावे की झलक अपने मान, यश के लिए उत्पन्न हो जाती है तो वह ढांचा ही ढांचा रह जाता है। जो होता तो खूबसूरत है, परन्तु अन्दर से निर्जीव–निष्प्राण बन जाता है। दिखावे के कारण अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो पाता। यह दिखावा भी तीन प्रकार का होता है–तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी रूप से। तीनों ही अन्तःकरण की शुद्धि से वंचित रहते हैं और तेरी ऐसी पवित्र महान् देन को क्षणभंगुर नाशवान् पदार्थ के लिए खो बैठते हैं। इस दिखावे के सत्यपालन में क्रोध अवश्य रहता है, गुप्त रूप से जमा रहता है। तमोगुणी सत्य के दिखावे वाले में लोभ और रजोगुणी वाले में काम। सतोगुणी वाले में अहंकार रहता है। विरला भाग्यवान् इस दिखावे से बचता है–जिस पर तेरी दया विशेष होती है।

८. व्रतपूर्ति पर प्रभु का धन्यवाद

ओं स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रयोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।। अथर्व० १६–७१–१

ओ मेरी वरदाता माता ! तूने मुझे अपनी शरण में रखकर ५३ वर्षों तक लगभग मेरी आत्मा का भरण पोषण किया और निरन्तर अपनी दया का पात्र बनाये रखा। हर प्रकार से मेरी लाज रखी, अब अन्त में इस व्रत के द्वारा मुझे अपने प्रभु पिता के कितना समीप पहुंचा दिया कि उस प्रभु को इष्टदेव सद्गुरुदेव और सचमुच जीता जागता पिता साक्षात् अनुभव करवा दिया।

आज पवित्र अथर्ववेद का मन्त्र जो तेरी महानता को पुकार–पुकार कर कह रहा था, वह मन्त्र मुझ पर पूरा चरित्रार्थ कर दिखाया। मां ! मेरी स्नेहमयी मां ! मंगलमयी मां ! वरदायिनी मां ! आज मैं गद्गद् हो तेरे चरणों में प्रेम अश्रुओं से नमस्कार कर रहा हूं। ओ मेरी पवित्र भगवती सावित्री गायत्री माता ! तुझे फिर नमस्कार हो ! नमस्कार हो।।

९. प्रभु ! सम्पूर्ण दुर्गुणों, वासनाओं को दूर कीजिए

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव। यजु० ३० ।३

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, सुख–स्वरूप, विघ्नविनाशक सब दुःखों के हर्ता, सकल सुखदाता प्रभो ! कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुर्वासनाओं कुचेष्टाओं, कुसंस्कारों, दुःखों दर्दों क्लेशों, संकटों, पीड़ाओं और दुर्दिनों को दूर कर दीजिए। मेरी नस–नस, नाड़ी–नाड़ी, रोम–रोम बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस सहस्त्र दो सौ एक नाड़ियों और बाल खाल से मेरी आत्मा से, समस्त वासनाओं को दूर कर दीजिए और अपने गुण अपने कर्म और अपने स्वभाव का मेरे हृदय पर राज्य स्थापित कीजिए।

राजेव दश्म निषद्धोऽधि बर्हिषि

अर्थात् आपके गुण, कर्म स्वभाव का राज्य मेरे हृदय पर रहे।

१. जीवन का मैंने सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है भगवान् तुम्हारे हाथों में।।

२. हम तुमको कभी नहीं भजते,
तुम हमको कभी नहीं तजते।
अपकार हमारे हाथों में,
उपकार तुम्हारे हाथों में।।

३. हम में तुम में है भेद यही,
हम नर हैं तुम नारायण हो।

हम हैं संसार के हाथों में,
संसार तुम्हारे हाथों में।।

४. दृग् बिन्दु बनाया करते हैं,
इक सेतु विरह के सागर पर।
जिस पार पे हम विचरा करते,
वह पार तुम्हारे हाथों में।।

१०. ज्योतियों की ज्योति प्रभो मन का अन्धेरा दूर करो

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
(यजु० ३४।१)

ज्योतिर्मय से ज्योति जगा ! हे ज्योतिस्वरूप प्रभो ! सर्व संसार के अन्दर तेरा प्रकाश हो रहा है। मेरे शरीर के चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है परन्तु मेरा अन्दर प्रकाशशून्य है। कितना अन्धेरा है कि आप का इतना बड़ा सूर्य जो सर्व संसार को प्रकाश देने में समर्थ है, तेरी विद्युत् की चमक कई भूले यात्रियों को मार्ग दिखा देती है पर मेरे इस नगण्य मन का मार्ग प्रदर्शन करने में असमर्थ है। जहाज के जहाज तेरे ध्रुव की कृपा से अपनी यात्रा सीधी पूर्ण करके अपने लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं। परन्तु ध्रुव भी इस मन से हार मान गया है। चन्द्रमा अपने

शीतल प्रकाश से अनेक प्राणियों को मोहित कर लेता है ! कान्ति और शान्ति देता है परन्तु मेरे संतप्त मनको नहीं शान्त कर सकता। नाथ ! यह बड़े वेग वाला मन तेरी अपनी ही ज्योति से प्रकाशित हो सकता है। तेरी ही सामर्थ्य से शान्त और शीतल बन सकता है। तुझ से ही मार्ग प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है। भगवन् ! कृपा करो एक बार तो मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो। आखिर मैं तेरे ही स्वरूप में लीन हो ब्रह्ममय कहलाता था। यह तू जानता ही है कि अपने आप तो तेरी गोद से जुदा नहीं हुआ। ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में अपनी स्वेच्छा से नहीं आया। तेरे नियम ने ही मुझे पृथ्वी पर वास प्रदान किया और तूने अपने अमृत पुत्र का ऐसा मन साथी बनाया जो अब मुझे असंख्य वर्षों से तेरे समीप नहीं बैठने देता। (अच्छी तूने भलाई की !) कभी पिता भी पुत्रों को इतनी देर जुदा रखता है ? हे पिता ! क्यों व्याकुल कर रहे हो ? क्या इसमें तेरा गिला नहीं है ! निःसन्देह तेरे समान कोई नहीं जो मेरी सिफारिश करे। तुझे तरस दिलावे, सच्च सुनावे। परन्तु मैं तो तेरा पुत्र हूं। आप ही कह देता हूं तेरी गोद में बैठने वाले अनेक तेरे पुत्र आगए परन्तु तेरी प्रसन्नता में कमी नहीं आई नहीं तो तू मुझ पतित की पुकार सुन ही लेता।

भक्तवत्सल आप हो अब और मत भटकाइये।
पुत्र हूं, निज गोद में मुझ को पिता बिठलाइये।।

११. भक्त भगवान् से क्या मांगे

हे भगवान् महिमा महान् ! मैं बहुत बार ऐसा भी विचार करता हूं कि तुझ से कुछ मांगू, पर फिर भी रहा नहीं जाता। कहते हैं 'बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख' पर मैं कुछ ऐसा निर्बल–सा हूं कि कई–कई दिन तो यही कहता हूं–प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो। फिर भी मेरी याचना क्यों उत्पन्न हो जाती है। मुझे इसका वास्तविक ज्ञान नहीं होने पाता कि मांगना अच्छा है या न मांगना अच्छा है। हे अबलों के बल ! असमर्थों के सामर्थ्य ! मुझ अबोध के बोध ! निराश्रय के आश्रयदाता ! आप ही कृपा करो, मार्ग दर्शाओ सन्तमार्ग पर चलाओ। मेरी वाणी में तेरा मिठास हो, मस्तिष्क में तेरा विश्वास हो, हृदय में तेरा प्रकाश हो, मन में तेरा निवास हो। मैं एक और याचना रखता हूं, कि चित्त में मेरे तेरी ही स्मृति हो, मन में धृति हो, वाणी पर तेरी श्रुति हो और मस्तिष्क में तेरी ही आकृति हो बस इससे अधिक नहीं मांगता। इन वस्तुओं को मांगे बिना रह भी नहीं सकता। यदि ये वस्तुएं भी न मांगनी हों तो प्रभो ! अपने आश्रित को निःसंकल्प और संकल्प–विकल्प से रहित कर दो। आप

ही करोगे तो यह मन चुप और शान्त हो जाएगा। तेरे संकेत से तृप्त और संतुष्ट हो सकता है और किसी से नहीं हो सकता। इसलिए आप जैसा भी मेरे लिए मंगल देखो वही करो, वही करो।

१२. जननी मां व प्रभु रक्षा कीजिए

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे।

साम० २६२

हे परमेश्वर मेरी माता और आप दोनों ही मेरे लिए समान हैं। जैसे पुत्र माता की सेवा करता है वैसे ही मैं आप की सेवा करूंगा। माता जैसे पुत्र को पालती है वैसे ही आप मेरा पालन करें। ज्ञान–धन, भक्ति–धन और वाक्–सिद्धि के लिए आप और मेरी माता दोनों ही मेरा रक्षण करें।

१३. सर्वशक्तिमान् ! रक्षा कीजिए दयालु ! मेरा परित्याग न कीजिए

ओ३म् सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च। विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः।। ऋ० मं० १० ।३७ ।२

हे सर्वाभिकेश्वर ! आप की सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया है वह हम को सब संसार से सर्वथा

पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रखे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो। दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् मेरी रक्षा करें। जिस दीव्य सृष्टि में सूर्य आदि को दिवस के निमित्त आपने ही विस्तारे हैं। वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है) उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। जो–जो विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला) उसको आप नष्ट कर दीजिए। क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होती है। आपके सामने कोई राक्षस (दुष्ट–जन) क्या कर सकता है ? आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हैं। सूर्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होवो–जिससे हमारी अविद्या अन्धकारमयता सब नष्ट हो।

ओं मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक्।।

साम० २६०

हे अन्धकार अज्ञान विनाशक प्रभो ! मैं आपका आश्रित हूं। आपकी एकमात्र शरण हूं। मेरा कभी त्याग न कीजिए। आपका सहारा (आश्रित) ही एकमात्र सकल सुखों का देनेवाला है। आप हमारी रक्षा करो। आप की प्राप्ति ही एकमात्र मेरा लक्ष्य है। आप का तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते। सो आप कभी भी मेरा त्याग न कीजियेगा।

१४. पाप की जड़, संस्कारों का नाश कीजिए प्रभु देव ! शरण पड़े की लाज रखिए।

ओं ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः।।

ऋ० १।३६।१४

प्रभुदेव ! त्राहि–त्राहि मेरी रक्षा करो, रक्षा करो; सर्वोपरि विराजमान प्रभो ! अविद्या आदि महापाप से सदैव अलग रखो, निरन्तर मेरी रक्षा करो। विज्ञान से विविध विद्या दान दें। प्रभो ! अनेक बार आप मेरी रक्षा करते हो जन्मकाल से ही मेरी रक्षा करते आये हो परन्तु वह रक्षा तत्कालीन बचाव कर देती है सदा के लिए नहीं करती, कुसंस्कार फिर जाग आते और फिर आप मेरी रक्षा कर देते हो।

परन्तु नाथ मैं तो इस से दीन बना रहता हूं। यद्यपि

प्रभु अपने स्वामी से प्रार्थना करने में कोई दीनता नहीं, आपके सामने तो मुझे सदा दीनता से ही पुकार करनी है फिर भी प्रभुदेव ! मैं आपका आश्रित हूं। आप परम पुनीत हो, दयालु और सर्वशक्तिमान् हो। आप मुझे अपना विज्ञान दें। यह ज्ञान तो मुझे रहता है कि आप वृत्ति शत्रु हैं, परन्तु विज्ञान न होने से मैं उसे बल नहीं दिखा सकता। जैसे पूर्वकाल के ऋषि, मुनि पापवृत्ति से कड़क कर बोल देते थे, धमका देते थे।

ओं परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।

अथर्व० ६।४५।१

अरे पाप ! शत्रु ! दूर हट जा, परे हट जा। भाग जा हमारे समीप से। मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं–मुझे इच्छा नहीं तुम्हें पास रखने की............इसलिए प्रभुदेव ! कृपा करो। आप उत्कृष्ट (ऊर्ध्व) हो,. सबसे उत्कृष्ट हो। मुझे जो आपने अपनी अपार दया से यहां तक पहुंचाया है, एक गरीब, बेबस और अनाथ अपठित असमर्थ के ऊपर इतनी दया की है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उत्थान किया है। जन्म से कितने दुर्गुणों और अवगुणों से बचाए रखा है और कितने अवगुण विनष्ट कर दिए हैं। कितनों के सम्मुख आने पर उनको

मार भगाते हो। जनता का मुझे प्रेमपात्र बनाते हो, आदर सम्मान की दृष्टि से उसमें रमण कराते हो। इस मेरी ऊर्ध्व अवस्था की रक्षा करो कि ये क्षुद्र वृत्तियां, निकृष्ट वासनाएं तेरे प्रदान किये उच्च आसन से मुझे न गिरा देवें। तो प्रभु देव अपने नाम की लाज रख, तू मेरा प्रभु है और मैं तेरा आश्रित हूं। आप जैसे समस्त संसार का नित्य पालन करते हो, मेरे काम, क्रोध, लोभ अहंकार आदि सब शत्रुओं को अच्छे प्रकार जला दो। सम्यक् भस्मीभूत कर दो। ओ मेरे प्रभो ! पाहि—पाहि रक्षा कीजिए— मेरा हृदय रमणीक स्थान बन जाए, आपके सदा निवास का स्थान बन जाए।

पशु, पक्षी, मनुष्य भी वहां ही डेरा लगाते हैं, जहां उनको रमण करने का क्षेत्र मिलता है फिर कैसे अपवित्र हृदय में आप वास करो। इसलिए प्रभो ! जहां आप रमण करते हो वहां ही अपना सर्वज्ञान और सर्व—आनन्द बखेरते हो। आप परम पुनीत सर्वशक्तिमान् परम दयालु प्रभु हो, मेरे प्रभु हो, और मैं आपका आश्रित, महा अपवित्र, कायर, भीरु, कठोरहृदय यदि रह जाऊं तो यह आपके नाम को शोभा नहीं देगा। यह जंचता नहीं कि प्रभु तो परम पवित्र हो और प्रभु का आश्रित अपवित्र महा अपवित्र रहे। प्रभु तो सर्वशक्तिमान् हो और प्रभु का आश्रित भीरु कायर

रहे। प्रभु तो परम दयालु हो, प्रभु का आश्रित कठोर हृदय रहे। इसलिए मैं आपका आश्रित पुकार करता हूं।

ओं सोम ररन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये।। ऋ० १।२१।१३

हे सोम परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। जैसे सूर्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय पशु अपने-अपने विषय घास आदि में रमण करते हैं वा जैसे मनुष्य अपने घर में रमण करता है वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिए जिस से हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो।

रसो, रमो, अभिराम जैसे गौवें रमें यव वन में,
मनुष्य रमे निज सौख्य सदन में, ऐसे प्रिय तुम मेरे मन में।
करो अभी विश्राम।

१५. भक्त की आह जारी, प्रभु जी दर्शन दीजिएं

मेरे प्रभु ! बस लगातार सात घण्टे से उदास हो रहा हूं, रोना चाहता हूं। आंसू ही नहीं निकलते। तू इतनी कृपा भी नहीं करता कि मुझे रुला ही देवे। मेरा पश्चात्ताप हो जावे। इसीलिए व्रत में तू बिठाता है कि स्वप्न में भी मेरी सहन-शक्ति न रहे। इसलिए कि अहंकार के घोड़े पर सवार हूं यही कारण है कि तूने मुझे घोड़े पर सवार

कर दिया है कि मैं पैदल यात्रियों को उनके मर्यादा सिखाने पर क्रोध से उत्तर दूं, यदि व्रत में भी तू मेरी रक्षा न करेगा तो और कोई आकाश से देवता ने तो उतरना नहीं। मैं अपने इस पाप को अथवा क्रोध से उत्तर देने के पाप को बहुत ही अनुभव कर रहा हूं। इसीलिए बारम्बार प्रयत्न करता हूं कि खुले दिन से (फूट–फूट कर) रुदन करूं। परन्तु अनोखी विचित्रता है कि रुदन आता ही नहीं। मुझे उस नाड़ी का ज्ञान नहीं जिसको दबाने से रुदन आजाए। लोगों के सम्मुख शीघ्र रुदन आजाता है। दिखावे और बनावट में भी वे नाड़ियां इस का पूरा–पूरा साथ देती हैं। पर अब तो मुझे जंगल की एकान्त कुटिया में देखकर मेरी सुनती ही नहीं। पता नहीं मन ने उनको कहां छिपा दिया है। प्रभो एक तू ही मेरे साथ कुटिया में है। पर मन जानता है कि तू भी सामने दृष्य (जाहिर) नहीं। तेरी विद्यमानता का तों नाम ही नाम है। तू केवल नाममात्र को ही है। अन्यथा एक बार तू मेरे सामने आजावे तो मैं सच कहता हूं, सौगन्ध–पूर्वक सत्य कहता हूं कि मेरी सारी की सारी नाड़ियां मन सहित फूट–फूट कर रुदन करने लग पड़ें। प्रभो ! आजा मान जा भला रुलाने में भी तेरा कोई खर्च लगता है ?

भगवान् ! मैंने मांगा क्या ? रोना। कौनसा राज्य

मांग लिया। नन्हें बच्चे सारा दिन रोते हैं—निर्धन पेट की रोटी को रोते हैं। रोगी फूट—फूट कर रोते हैं। छात्र अध्यापक की मार से रोते हैं। अनाथ अपने सिर की छाया पिता को रोते हैं। इतने रोने वाले लाचारी से रोते हैं, उनको तू ही रुला रहा है ! वे हंसना मांगते हैं, तू रुलाये जाता है और मैं रोना मांगता हूं तो एक भी नहीं सुनता।

हां तू सच्चा है। उनका रोना तो तेरा मनोरंजन है और मेरे रोने में मेरा ही मनोरंजन होगा। तब तो तू भी स्वार्थी है। मुझे (मनुष्य को) यूं ही बदनाम करता है। तेरा परमार्थ तो तब है जब तू मेरा मनोरंजन करे।

आ, आ, अपने नाम का वास्ता मान। तुझें तेरे नाम की ही शपथ देता हूं, अपने नाम की लाज रख—इस छोटी—सी कुटिया में आजा, सरकंडों की दीन कुटि में आ विराज, राज्य महल नहीं है कि तुझे फंसा लेंगे। द्वारपाल न आने देंगे। यह तो अनाड़ी (अकिंचन) की कुटिया है। देख तुझे ढूंढने के लिए क्षुद्र—क्षुद्र जन्तु रंग—बिरंगे वेश धारकर मेरे पास ही आते हैं। भूरि—भूरि च्यूंटियां, काली टिडनी और मकोड़े, श्वेत रंग के कीड़े, लाल पीले भिड़, बिचारे हरदम तुझे इसी जगह खोजते रहते हैं। राज्य—महल में तो इनको स्थान नहीं मिलता, ये तुझ जगदाधार को यहीं ढूंढते हैं। हरे—हरे रंग के

मच्छर दल के दल बांध मेरे इर्द–गिर्द परिक्रमा करते हैं। बड़ी सुरीली आवाज़ से गान करते हुए नृत्य करते हैं और मेरे कान के पास अपनी बीन बजा–बजा कर पूछते हैं कि प्रभु–आश्रित ! तू ने प्रभु को कहां छिपा रखा है। सारी कुटिया को छान मारते हैं—पर तू उन को भी दर्शन नहीं देता। कुटिया के बाहर दिन–भर कौवे और चिड़ियां मुझे तेरी पुकार करते सुनाई देते हैं। फ़ाखता बिचारी तो रात को भी बोल उठती है।

आ मित्र, आ, आ, सखा आ, मेरी पानी की डिग्गी (तालाब) के मेंढ़क भी तुझे जोर–जोर से बुलाते हैं। प्रभो मेरी कुटिया का सारा वायुमण्डल मेरे लिए सिफारिश करता है कि तू इस दीन को दर्शन दे। वे समझते हैं कि जो तेरा प्रभु–आश्रित है तू उसके पास तो जरूर ही आता होगा, वे अन्दर घुस आते हैं पर तुझे न पाकर निराश हताश होकर वापस चले जाते हैं। पर प्रभो ! धन्य हैं वे जो कि आते और जाते रहते हैं परन्तु पीछा नहीं छोड़ते। हे मूकों की वाणी ! अधमरों के जीवन ! निर्धन अशक्तों की शक्ति ! गरीब बेकसों की शान ! अब करुणा कर, दया कर। ऐसी कुटिया कहीं नहीं मिलेगी। तेरे प्राकृतिक घासफूस सरकण्डों की बनी है। बनाने वाले ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम से बनाई है। इसमें दुकानदारी या सौदागरी की कीमत का भाव सम्मिलित नहीं हुआ।

प्रेम के स्रोत आ जा—प्रेम के भूखे आ जा—जो अर्थार्थी व्याकुल प्रेम करता है वह तृप्त सुखी जीवन बिताने वाला नहीं करेगा। अकेले के पास न आयेगा तो मेले में कहां समायेगा। दुई वालों के पास तो तेरी एक अधेला भी कीमत नहीं पड़ती। तू स्वयमेव उनसे दूर भागता है। और जो 'द' को हटाकर उई कहता है उसके पास भी नहीं जाता। फिर किसके पास जायेगा, आप ही बता ! इस व्रत का कुछ इशारा दे। यहां किस पथ–प्रदर्शक को बुलाऊं ? जब व्रत ही अदर्शन कर दिया, मौन कर दिया। स्वामिन् ! यह शरीर, यह आत्मा तेरे ही आश्रित है। तू प्रभु है उस का और यह तेरा आश्रित है। कह दे क्या कहूं। कहो तू ही तू है.......ई..........तू ही।

१६. प्रभु सविता देव ! मार्ग-प्रदर्शक बन, प्यार से अथवा बांधकर अपना अनुगामी बना

हे पिता ! मैं तुझे कैसे बांध सकता हूं ? मनुष्य तो पशु को बांधा करता है और मैं तो स्वयं ही पशु हूं। मुझे तो तू ही बांधेगा। पशुओं में भी मैं तो ऊंट हूं ऊंट ! मेरी नाक में एक में नहीं दोनों नथूनों में मुहार डालकर तू राह पर चलाता चल। प्राण अपान की मुहार लगाकर तू ले चल, जिधर भी ले चल तू आगे मैं तेरे पीछे। यह संसार तो भयंकर मरुस्थल है। मनुष्य और सभी पशुओं

के इस पर चलने से पांव फिसल जाते हैं। जो पग रखते हैं वही पीछे फिसल जाता है। चाहे वह तीव्रगामी भी हो, मैं तो तीव्रगामी नहीं इसलिए ऊंट ही अच्छा रहूंगा। और पशु तो गले में, सींगों में, मुंह में रस्सा और लगाम डलवाएं, मैं तो नाक में मुहार से चलूंगा। तेरे लिए भी सुगम और मेरे लिए भी सावधानी कराने वाली इस मरुस्थल में तो कोई मार्ग शाह राह की तरह दृष्टि में नहीं दीखता तू ही मेरा सारथी, सारवान, स्वामी ऊंट का इस असीम मरुस्थल बेराह से, सीधा अपने जाने हुए मार्ग (सुषुम्णा) से गंतव्य स्थान पर अपने घर ले जा सकता है। और जहां तू बिठा दे तुझे किसी खूंटे की आवश्यकता नहीं—न किसी वृक्ष की और न सहारे की, रेत में न खूंटा गाढ़ा जा सके—न वृक्ष डिग सके। पशुओं को तो बांधना मरुभूमि में कठिन होता है ऊंट को तो जहां भी बांधना चाहो सारबान जानु बांधकर छोड़ देता है।

(बर तवकुल जानुए उष्ट्र विवद) स्वर प्रणिधान के छोटे से टुकड़े उसी मुहार से बांध सकता है और मैं तेरा ऊंट निश्चित वहां ही बैठे—बैठे जुगाली (मनन) करता रहूंगा और मस्त बैठा रहूंगा। फिर जब तू जहां चाहे चरा ले, जो चाहे चरा ले, ऊंट किसी वस्तु से परहेज या एतराज नहीं करता। मालिक की रजा पर चलता और

चरता है जितना भार चाहे तू आप ही लाद और आप ही उतार। मार्ग में भी आंवर–सांवर की सम्भाल (Balance) बनाना आप ही कर और मेरे सुस्त हो जाने पर, प्रमाद करने पर हे हुम, हे हुमकी (Speed बढ़ाने की आवाज़) शोर तान से जगाता भी चलेगा। मैं तो तेरी मुहार से बंधा तेरी पीछे चलता रहूं। हे भगवान् ! मैं अपने को तेरा ऊंट इसलिए कहता हूं कि जैसे ऊंट की कोई कल सीधी नहीं और इतना बड़ा हुआ मूतना ही न सीखा, ठीक वही हालत मेरी है। हे प्रभु ! मेरे पिता ! सविता देव ! मेरी इस पुकार पर जरूर मेहर करो।

१७. पुकार–प्रभु ओझल न होना

प्रभु दया–हे प्रभुदेव ! मैं कई बार कभी–कभी उदास सा हो जाता रहा कारण कोई भी प्रतीत न होता। मैं आश्चर्य भी करता कि न तो मुझे कोई कष्ट है, न कोई चिन्ता, न किसी वस्तु की कमी। तेरी अपार दया से मुझे सब कुछ प्राप्त होता ही रहता है। आज मुझे पता लगा, वह भी तेरे इसी देव ने या तेरी ही दिव्य प्रेरक शक्ति ने एकदम सुलझा दिया कि जब तू स्वयं पर्दा डाल ओझल हो जाता है, अपनी दिव्य बाणों को सुकेड़ लेता है तो उसी दम मुझे उदासी आ घेरती है। जैसे शिशु जो अपनी मां के ही आश्रित रहनेवाला होता है, घर

के लम्बे आंगन में मां से दूर खेलता खुलता और फिरता, फुदकता रहता है। उसकी दृष्टि कभी–कभी देख लिया करती है कि मां मौजूद बैठी हुई है। वह फिर अपने में दौड़ा फिरता है और जब मां के समीप बैठे हुए भी मां को ओझल पाता है तो अत्यन्त उदासीन दुःखित होकर चिल्लाने लग पड़ता है। हे देव ! सचमुच आज अपनी उदासी के कारण को सुलझाया तभी तो वेद कहता है भक्त के लिए **"मा न इन्द्र परावृणक्"** क्यों जुदा न हो मुझसे ? **भवा नः सधमाद्ये** अपने संग से आनन्द रस के लिए और भय से रक्षा के लिए मुझ से जुदा न हो। **त्वं न ऊती** तू ही मेरी रक्षा है। तू ही मेरे लिए प्राप्त करने योग्य है। **त्वं इत् न आप्यम्** इसलिए फिर पुकार करता है **मा न इन्द्र परावृणक्**। यह तो प्रभु समझ में आज आ गया मगर अभी समझ नहीं आई कि मां तो भला अपने और घरेलू काम के लिए ओझल हो जाती है। तू क्यों ओझल हो जाता होगा।

हे प्रभुदेव ! मैं अब समझा। वह भी तेरी ही दया प्रेरणा से, मैं न समझ सकता था कि तेरा भजन ध्यान करते मन तुझ से अन्य ओर क्यों खिसक जाता है। जब तू अपनी दिव्य ज्योति शक्ति या सामर्थ्य को जिस इन्द्रिय से हटा लेता है या सुकेड़ लेता है तब उस में

आसुरी शक्ति (संसारी) घुस जाती है और मन को उधर फेर लेती है। जब तक तेरी शक्ति का वास रहता है तब तक कोई आसुरी गुण नहीं आ सकता। तुझ में ही मन इन्द्रियां एक तार आत्मा के साथ बनी हैं, हे प्रभो ! तू हमें कभी न त्याग **"मा न इन्द्र परावृणक्"**। हे प्रभो ! फिर मैं क्या करूं ? मेरे तो बस की बात ही नहीं। जब तू अपनी दयादृष्टि को हटाले तो मैं क्या करूं ? असमर्थ–अबोध तेरा आश्रित तो पहले हूं और कौन बचाए ? बचानेवाला भी तू ही है, सुलझानेवाला भी तू ही है।

१८. भक्तिरस तथा वात्सल्य प्यार के लिए प्रार्थना

प्रभुदेव ! वेद भगवान् तो भक्ति का रूप यही बार–बार दर्शाता है, कि तेरा भक्त सोमरस तैयार कर रखता है और तुझे बुलाता है, आओ प्रभुदेव ! आओ मेरे इस भक्तिरस का सर्वोत्तम भाव से पान करो। तेरे ही लिए मैंने अलंकृत किया है। मगर मैं तो प्रभुदेव उल्टा ही आप से रोजाना प्रार्थना करता हूं, कि आओ प्रभुदेव ! मुझे भक्ति अमृत रस पिलाओ, मैं अशक्त अबोध तेरा ही आश्रित हूं, मुझ में तो न तैयार करने की अकल है, न ही रस मेरे पास है। नन्हा बच्चा अबोध बालक को जैसे मां, प्यारी मां उसे पकड़कर अपना सहारा देकर अपने स्तन

से लगाकर अमृत रस पिलाती है, मैं तो वैसा तेरा अबोध, अशक्त, असमर्थ आश्रित बालक भक्त हूं और जैसे घुटने टेक घसीट-घसीट लंगड़े पांव से मां की गोद को छोड़कर मां के आंगन में दौड़ता भागता है और फिर मुड़कर मां के पास आ जाता है, बार-बार यही खेल शुगल बनाए रखता है। मां भी बड़ी प्रसन्न होती है। ठीक ऐसे ही मेरा यह मन भजन करते समय तेरी अमृत गोद को छोड़कर तेरे ब्रह्माण्ड (आंगन में) भाग जाता है और फिर तेरे भजन, तेरी शरण में आजाता है। बार-बार बच्चे की तरह ही करता रहता है, तो क्या प्रभु तू प्रसन्न नहीं होता होगा ? तू तो माता (माता शतक्रतु) है। अपने इस ब्रह्माण्ड रूपी आंगन में तूने ही विषय रूपी खिलौनों को मां की तरह आगे फैंक रखा है। बच्चा खिलौनों में मस्त हो जाता है। जब भूख-प्यास सताती है अथवा मक्खी मच्छर डंक मारता है तो रोकर खिलौनों को छोड़कर मां की ओर दौड़ता है। वैसा ही मेरा हाल है। प्रभुदेव ! आंगन भी तेरा, खिलौने भी तेरे, आश्रय और गोद भी तेरी। प्रभुदेव ! भावना तो मेरी तेरे चरणों में लगी रहती है और फिर तेरी शरण रोता हुआ दौड़ता हूं। प्रभु देव ! मैं अशक्त, असमर्थ, अबोध तेरा आश्रित हूं, आप ही संभालिए तेरी रहमत का इच्छुक हूं **'मा न इन्द्र परावृणक्'** साम. २६०

१६. भक्त की आकांक्षा, प्रभु की दया व तरस

प्रभुदेव ! मुझे मान नहीं चाहिए। केवल दया व तरस मांगता हूं। आपकी दया और तरस चाहता हूं। आपके प्यारे सन्तों, भक्तों, योगियों, तपस्वियों की दया और तरस चाहता हूं। दीन दुखियों और अपने से छोटे और बराबर वालों से भी दया और तरस चाहता हूं। मान से मेरा उत्थान कल्याण नहीं हो सकता। दया और तरस से मेरा उत्थान कल्याण निश्चित है। मान मेरे मन को आर्द्र नहीं बना सकता। दया और तरस से मेरा मन तुरन्त आर्द्र हो जाता है। मान देनेवाले से इतना प्रेम नहीं किया जा सकता जितना कि दया और तरस करने वाले के प्रति श्रद्धा, प्रेम और भक्ति के भाव पैदा हो जाते हैं।

मान से जो खुशी होती है वह अभिमान पैदा करती है और दया तरस से जो खुशी होती है वह अत्यन्त विनम्र और विनीत बना देती है। इसलिए प्रभुदेव मैं तेरी और सब तेरी प्रजा की दया और तरस का इच्छुक हूं।

२०. विरक्त भक्त की अनासक्ति के लिए याचना

हे मेरे प्रभो ! जो भी सदा मैं अपने अन्दर महसूस करता रहता हूं और मुझे (Pinch) दुःखी करती रहती है और आप भी समय पर उसके विनाश के लिए संकेत कर दिया करते हैं, पश्चाताप भी होता है, आपकी कृपा अपार

से हल सूझा है। यदि आपकी ही प्रेरणा है, तो अवश्य आप उसे पूरा करेंगे। जैसे अन्य अनेक असम्भव कार्य भी मेरे, अति सुगम, आपने क्षण में कर दिखाए। मैं डरता रहता था कि फिर मेरा प्रवृत्ति मार्ग न बन जाए। यदि आपकी प्रेरणा है तो मेरे निवृत्ति मार्ग में कोई अन्तर न पड़ेगा और आज से ही शुरू हो जाएगा। इसलिए पृथक् फण्ड खोला है, अतिथि भण्डार बना दिया गया है। प्रबन्धकर्त्ता साथी स्वयं हिसाब और प्रबन्ध रखेगा।

२१. अल्पज्ञ भक्त की पुकार

हे मेरे प्रभो ! तेरी इतनी अपार दया होते हुए भी क्या अनुभव करता हूं कि मैं तेरी प्रार्थना स्तुति उपासना तो करता हूं—मगर सच यह है कि मैं तेरे किसी भी गुण को नहीं पहुंच सका—मेरी तेरे किसी गुण तक रसाई नहीं हो पाती—अर्थात् मैं तेरे किसी एक गुण को अपने अन्दर पूर्णरूप से पकड़ नहीं सका—धारण नहीं कर सका, कितना आश्चर्य ?

अपनी अपार दया से मेरे अपराधों को क्षमा भी कर देते हैं। तब मैं पश्चात्ताप से ज़ार–ज़ार रोता हूं। तब भी तेरी अपार दयालुता तेरे न्याय कर्म देखते सुनते और स्वयं भान करते हुए अपने साथ बीतने पर उसे धारण नहीं कर सका तेरा भक्त बनना कितना दुष्कर और

कठिन है—तभी तो वेद भगवान् स्वयं कहता है (सामवेद मन्त्र १५४६)

ओं कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्। वराय देव मन्यवे।।

ऋग्वेद मण्डल ८। सूक्त ८४। मंत्र ४।

हे सर्वव्यापक ! हे आध्यात्मिक बल के रक्षक, हे दिव्यगुणविशिष्ट परमेश्वर ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं—ज्ञानस्वरूप हैं, आपकी स्तुति मैं किस रीति से करूं ? आज तक आपके गुणों तक मेरी पहुंच नहीं हुई है—स्तुति करूं तो कैसे करूं ?

२२. आत्मिक सुख, आत्मिक शान्ति, आत्मिक आनन्द के लिए प्रार्थना

प्रभुदेव ! आप सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। वह तो आप ही हैं और रहेंगे। वह आपको ही समझता है। अल्पज्ञ जीव तेरी रचना को समझ ही नहीं सकता। और मैं तो तेरी स्तुति और तेरे गुणगान के लिए शब्द भी तेरे दिए भण्डार से नहीं चुन सकता। लोग बड़ी सुन्दर शैली से सुन्दर शब्दों की रचना कर—कर तेरी स्तुति करते हैं परन्तु मुझ में यह भी भारी त्रुटि है—कि खुद तो सुन्दर शब्दों की रचना नहीं कर सकता, दूसरों की भी नहीं सुहाती, क्या करूं। मैं तेरा आश्रित हूं। बच्चों की तरह,

जैसे अन्दर से उद्‌गार निकलते हैं, वैसे ही तेरे ही सामने बोल देता हूं। तू रीझता हो या नहीं मगर मैं तो अपने मन में रीझ जाता हूं। तू समग्र ऐश्वर्ययुक्त है, चाहे मेरी जेब में कुछ नहीं मगर मुझे संसारी ऐश्वर्य तो तू दूसरों की जेबों से निकाल देता है।

सबको मेरा खजाञ्ची बना दिया है चैक तू काटे, माल खजाञ्ची दे और मेरा घर भर जाये–तेरी कितनी रहमत है ?

परन्तु प्रभु, मुझे दैवी ऐश्वर्य (दम, शम–उपरति तितीक्षा ज्ञान और वैराग्य) की जरूरत हर वक्त रहती है। वह तो किसी की जेब से नहीं मिल सकता न उसका कोई खजाञ्ची है। वह तो केवल तू स्वयं ही अपनी निज दया से प्रदान कर सकता है। सो अब तो उसे पूरा कर। भगवान् अपने आश्रित को एक ऐश्वर्य की शिक्षा बख्शो। आप सकल दुःखहर्त्ता हो, मेरे जिसमानी दुःखों की निवृत्ति के लिए तो प्रभुदेव ! आप कितने सज्जनों को मेरी सहायता सेवा सहानुभूति के लिए भेज देते हो–चाहे दुःख वे दूर नहीं कर सकते–केवल आप ही करनेवाले हो, फिर भी सेवा सहायता के लिए २४ घण्टे मौजूद रहते हैं। मगर पापविनाशक सज्जन साथी–पुत्र–सेवक कोई नहीं मिलता। आप ही एकमात्र पाप–विनाशक हो। संसार

के सज्जन मित्र सब असमर्थ हैं, अशक्त हैं। आप मेरी पाप वासनाओं को दग्ध कर दो तो कोई भी दुःख जिसमानी न उपजेगा और न किसी को मेरी सहायता, सेवा के लिए आपको प्रेरणा करनी पड़ेगी, न किसी को चिन्ता और मेरे लिए कष्ट होगा। मैं और वह सब बच जायेंगे। अब तो यही भिक्षा दीजिए, वरदान दीजिए। कोई पापवासना रहे ही न। आप सर्वसुखों के भण्डार हो, मुझे हर प्रकार का सुख आपने प्रदान किया है। जिसे प्रेरणा करते हो वही मुझे सुख देने के लिए अपना पेट काट कर भी अपने आप को मेरे सुख के लिए तन–मन–धन निछावर कर देता है। कोई कमी नहीं रहती मगर मुझे आत्मिक सुख–आत्मिक शान्ति, आत्मिक आनन्द तो केवल आप ही से मिल सकता है। वह तो किसी के पास नहीं। मेरे सविता देव प्रभो, गुप्तप्रेरक ! जिस साधन से, जिस योग्यता से, जिस अधिकार से यह आत्मिक शान्ति–आत्मिक सुख, परमसुख प्राप्त हो सके वह–वह साधन की योग्यता और सामर्थ्य मुझे प्रदान कीजिए और अपने बल आश्रय से उसे अपनाने और कर सकने का अधिकारी बनाइये–

ओं विश्वानि देव सवितः !
दुरितानि परा सुव, यद्भद्रं तन्न आसुव।।

२३. भक्त की विनम्रता

वानप्रस्थ आश्रम

हे मेरे प्रभो! मांगना तो हुआ ही! जब जीव अल्पज्ञ और भोक्ता ठहरा और तू है ही दाता, देव, महादेव, जीव का मांगना और भोगना काम है और तेरा मानना और देना काम है। सब मांगते हैं सम्पत्ति शक्ति और मति जैसी-जैसी किसी को जरूरत और इच्छा होती है, और मैं प्रभु-आश्रित होता हुआ मांगता हूं। सम्पत्ति तो मुझे षट्, दैवी सम्पत्ति प्रदान कर। और सम्पत्ति तो पेट पालने-कारोबार करने के लिए प्रकृति माता दे रही है। तेरी अपार कृपा से बे अन्त रहमत से योग्यता से अधिक सुख और लाभ प्राप्त कर रहा हूं। अब तो मुझे आत्म-कल्याणार्थ तेरी दात दैवी सम्पत्ति की आवश्यकता है, और शक्ति का तू तो भण्डार है। सर्वशक्तिमान् है, मुझे इतनी शक्ति अपने गंजखाना से बख्श कि मैं तेरी निरन्तर भक्ति-श्रद्धा अटूट श्रद्धा से करता रहूं। अपनी रज़ा पर राजी रहने की शक्ति व साहस दे। हर हाल और हर काल में तेरा धन्यवाद गाता रहूं और मतिज्ञान अपने अनन्त ज्ञान से इतना ज्ञान जता कर कि जो तेरे प्रदत्त दान-भक्ति-धर्म-सदाचार-सेवाभाव को कायम रखें, सुरक्षित रखें-तिलमात्र फिसलने न दें। पाप ताप सन्ताप

से मेरी रक्षा कीजिए। पूज्य गुरुवर योगिराज महाराज के आदेश को पूरा कर सकूं।

व्रत-वानप्रस्थ आश्रम

आज प्रातः भजन प्रार्थना समय मैं प्रभु देव से कह रहा हूं—प्रभु देव ! मैं कितना खुशकिस्मत हूं, कि जो लोग मुझे देखकर प्रसन्न होते हैं, मेरे पसेगैब (अनुपस्थिति में) मेरा जिक्र तारीफ करके खुश होते हैं—वे तो हैं ही मगर तेरी अपार कृपा और भी है कि जो मुझ से घृणा करते हैं, वे भी बहुत खुश होते हैं। जब वे मेरी गिला शिकायत निन्दा की चर्चा करते हैं। पहले तो मेरे सुख में खुश होते हैं, और दूसरे मेरे दुःख में इससे भी ज्यादा खुश होते हैं। तेरी क्या विचित्र लीला है—मैं ऐसा कहते– कहते बारम्बार नतमस्तक शुक्र अदा करके गद्गद् होता रहा।

२४. भक्त की पुकार, जीवन मरण समय कायम रहे नमस्कार

हे प्रभु ! मेरे प्रभुदेव ! तेरी रहमत का तो अन्त नहीं है जो तूने मुझ अपने आश्रित पर करी है और नित्य करता रहता है। कभी–कभी तेरे चरणों में बैठा हुआ और अपने महापुरुषों और आपको सामने सम्मुख पूर्ण तसव्वर करता हुआ भी भजन ध्यान प्रार्थना सब नीरस पाता हूं। हृदय में आर्द्रता नहीं देखता, वाणी तो बड़ी आर्द्र होती

है। एक आंसू भी नहीं टपकने पाता। जब तेरी दया बहने लगती है तो पता नहीं कि वही आंसू धाराप्रवाह बहने लग जाते हैं। तू मेरा प्रभु परम–पुनीत परम दयालु और महान्–महान् सर्वशक्तिमान् है। तेरे, महात्मा बुद्ध जैसे भक्तों के सामने अंगुलिमाल जैसे खूनी डाकू और ऋषि दयानन्द के सामने वेश्या आते ही छमा–छम आंसू बरसाने लग गई। पापवासना दग्ध होगई। ऋषि ने एक ही शब्द अमीचन्द से कहा, "अमीचन्द हो तो मोती कीचड़ में पड़े हो।" ऐसी सूई लगी कि रिकार्ड बनकर इन्हीं शब्दों में बजने लगी। तमाम ऐब अमीचन्द के समाप्त हो गए। मेरे सामने दोनों शक्तियां मेरे महापुरुष और आप होते हुए मेरी वासनाओं को दग्ध नहीं कर सकते या करना नहीं चाहते। कोई नियम आपका आपको मान्य हो या आप मेरी वासनाओं को दग्ध करने में असमर्थ या विवश हैं और इन्हें पूरा कराना है, भोग भुगवाना जरूरी है तो मेरे और संस्कार न बढ़ें। मेरे इस व्रत समाप्ति पर मुझे ही समाप्त कर देवें। जो बकाया मेरी आयु इस मनुष्य जन्म में भोग की है उसे किसी ऐसे कुत्ता, पशु–पक्षी आदि में लगा दें जहां इन वासनाओं का भोग पूर्ण हो सके और समाप्त हो जावे। मनुष्य जन्म में तो भोग से और वासनाएं पैदा हो जाती हैं, पशुओं में भोग के साथ समाप्त हो

जाती हैं। एक प्रार्थना मेरी अवश्य स्वीकार करो। किसी भी जन्म योनि में आप मुझे भेजो, आपका मंगल वरद हाथ मेरी अंगुली को अपना आश्रय दें, पकड़े हुए रहें, जैसे अब आश्रित आपने मुझे बनाया, ऐसा सब योनि और सब काल में आपका आश्रित ही रहूं। किसी के दीन आधीन न होऊं। मेरा अन्त उसी प्रकार करो, जिस प्रकार मेरा जन्म किया। जन्मते मेरा सिर मेरी माता के चरणों में नमस्कार करता आया और तेरे ओ३म् नाम की रट पुकार करता आया। अब मेरे श्वास प्राणों का अन्त तेरी चरण–शरण बैठे उपासना ध्यान आराधना, प्रार्थना में तेरा नाम पुकारते और मेरे सत् गुरुदेव महापुरुष के चरणों में नमस्कार करते हुए निकले। मेरी आत्मा नमस्कार पुकार करती हुई परलोक गमन करे। यह मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करो। मेरा आदि और अन्त नमस्कार में हो।

२५. परमेश्वर की खोज कहां करनी होगी

ओं वेनस्तत्पश्यत् परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्। अथर्व० का० २ सूक्त १ मन्त्र १

प्रभो तुझे किस तरह गाऊं, तू तो दीखता ही नहीं। यह सारा जगत् तेरा ही विस्तार है। जो जगत् का थोड़ा–सा अंशमात्र दिखाई भी देता है तो उसमें भी तू

कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। तू है तो अवश्य परन्तु छिपा हुआ है। इच्छा हुई कि तुझे छिपकर ही देखूं जिससे तू मुझे दिखाई दे सके। शायद योगिजन इसीलिए पहाड़ों की कंदराओं और गुफाओं में जाकर तुझे ढूंढते हैं परन्तु तू वहां भी नहीं मिला। कंदराओं में भी तो पत्थर ही पत्थर दीखते हैं। वहां भी तेरा दर्शन नहीं होता। मुनिजन जंगलों में तेरा ध्यान लगाते हैं परन्तु वहां भी तू दर्शन नहीं देता, वहां केवल वृक्ष ही वृक्ष हैं। यदि मैदान में तेरी खोज करता हूं तो वहां खुला स्थान है तू छिप ही नहीं सकता।

अच्छा समुद्र में गोता लगाकर तुझे देखें तो क्या तू दीखेगा ? नहीं ! नहीं ! वहां तो बड़े–बड़े मगरमच्छ और अन्य जलजन्तु ही हैं। वहां तू कहां ?

फिर हे प्रभो ! अब तू ही बता ! कहां किस कोठे में किस कुटिया में द्वार बन्द करके मैं तुझे देख सकता हूं ?

नहीं; नहीं; जब मैं तुझ से पूछता हूं तो नकार (नहीं) ही मैं उत्तर मिलता है।

हे जगदीश ! तो क्या तू किसी से मिलना ही पसन्द नहीं करता ? तेरे पीछे लाखों मनुष्य मारे–मारे फिरते हैं। परन्तु तुझे तनिक भी तरस नहीं आता, प्रभो ! तेरा स्वभाव ही अनोखा है। तुझे किसी का डर तो नहीं जो तू प्रकट

नहीं होता। तू तो सर्वशक्तिमान् है, जग रचयिता, अजर, अमर और अभय फिर.......फिर क्या ऐसे रुलाता रहेगा? प्रभो! कभी मान भी लिया कर। मैं तुझ से धन नहीं मांगता जो तुझे देना पड़ेगा, राज्य नहीं मांगता कि तुझे किसी से लड़ाई करनी पड़ेगी, स्त्री नहीं मांगता कि किसी को प्रेरित करना पड़ेगा, शरीर नहीं मांगता कि जो स्वयं बनाना पड़ेगा। मैं तो मांगता हूं तेरा दर्शन.......... इसमें तेरा क्या बिगड़ता है? तुझे किसी दूसरे से कहना नहीं पड़ता, तेरा कुछ मोल भी नहीं लगता, कुछ बिगड़ता भी नहीं, पर मेरा सब कुछ सुधर जाता है।

बस...............बस...........प्रभो! आओ बहुत हो चुकी है। मेरे साथ बहुत हो चुकी...........अब कुछ तरस खाओ, दया करो कृपानिधे! कृपा करो सारी आयु रूठे न रहो, कभी तो मान भी जाओ बड़ा उपकार होगा। मुझ निमाणे के मान बनो, मुझ निराश्रय के आश्रय बनो–मुझ निताने की तान तुम ही हो। मुझ अटेक की टेक तुम ही हो। प्रभो मैं न्योटा हूं मुझे एक तेरी ही ओट है, प्रभो अब कृपा करो.....अहा......अहा तेरी कृपा हुई अतिशय कृपा सुन रहा हूं.......दिल से सुन रहा हूं। तू अपना रास्ता बता रहा है तू मिलेगा मेरे हृदय की गुफा में ही मिलेगा, मेरे हृदय की गुफा में ही मिलेगा अच्छा! अच्छा!! ठीक है। यह तो

बड़ा सुगम काम है बाहर भी टक्कर न मारनी पड़ी, घर में ही काम बन गया।

हां प्रभो ! फिर....कैसे..........आऊं.........आप कहते हैं गुफा के रास्ते। वहां तो घुप अन्धेरा है। वहां कोई पहुंच नहीं सकता। गुफा में घोर तिमिर है। मार्ग तंग है मंजिल दूर है। 'श्रद्धा का दीपक बनालो उसमें प्रेम की बत्ती रखो, अभ्यास का तेल डाल दो। ज्ञान की ज्योति से इस दीपक को जला दो, उजाला हो जायेगा। अच्छा, फिर इस दीपक के उजाले में इस घोर अन्धकारमय मार्ग को जल्दी से पार कर पावेगा।' हां......क्या कहा। जब प्रकाश प्रतीत होने लगेगा तो यह दीपक अपने आप हाथ से छूट जाएगा।

वाह प्रभो......वाह, मार्ग तो बड़ा कठिन था, परन्तु ढंग तो बड़ा सरल बताया। यह तो बड़ा सरल काम है, बड़ी कृपा हुई तीन चीजें तो मेरे पास हैं ही–श्रद्धा, प्रेम और अभ्यास ! अब केवल ज्ञान की कमी है। भगवन् वह ज्ञान कहां से लाऊं। दीनानाथ अब थोड़ीसी वस्तु के लिए अड़चन न लगाओ। यह भी आप ही दे दो, या बता दो। यदि कहीं से मोल मिलती हो तो खरीद ही लूं। नहीं ! नहीं ! ! यह तो खरीदने की वस्तु नहीं खरीदने से कब मिलेगी ?

प्रभो ! फिर वही—नहीं, नहीं आपाई। न जाने आपको क्या हो गया ? आप तो बड़े दयालु हैं, फिर यह अड़चन कैसी ?

प्रभो ! सच बतलाइये, यह ज्ञान न भी हो तो क्या इन तीन चीजों से किसी को आपका दर्शन नहीं मिला ? यदि पहले किसी को नहीं मिला तो, मुझ पर दया करो। मुझे ज्ञान की तलाश में उत्तेजित न करो और कृपा करके दर्शन दे दो। ज्ञान फिर कभी ढुंढवा लेना।

क्या मेरी यह विनती भी न मानोगे ? क्या मेरा इतना अधिकार नहीं ? मैं असंख्य वर्षों से भटकता फिरता हू, कहीं मुझको खाना नहीं मिलता, कहीं शीत से ठिठुरता हू, कपड़ा तक नहीं जुड़ता। कहीं रोने ने मुझे बेहाल कर रखा है। प्रभो मेरी मान—मर्यादा कुछ न सही, तुम्हारी तो सब कुछ है। कहते हैं जो तुम्हारी शरण आता है, वह तुम्हारा प्रकाश पाता है। प्रभो ! भिक्षा दो, जरूर दो, भिखारी को अपने द्वार से न लौटाओ।

प्रभो ! तुम दानियों के भी दाता हो। अच्छा बड़ी कृपा की, क्या कहा ? ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं और ज्ञान मिलेगा गुरु से। प्रभो ! तुम से अच्छा गुरु कहा मिलेगा। मेरा जन्म व्यर्थ न बिगाड़ो। यदि इस जन्म में पूरा गुरु न मिला तो, ससार नीचों और पाखण्डियों से भरा पड़ा है,

पूरे गुरु की मुझे पहचान नहीं, कहीं किसी के कपटजाल में न फंस जाऊं, तुम्हीं पूरे, परिपूर्ण और सच्चे गुरु हो। नेता और पथप्रदर्शक हो, तुम्हीं कृपा करो कुछ लेना हो तो इसी के बदले ले लो। मैं सब कुछ देने को तैयार हूं। यह घड़ी मुझे फिर कब हाथ आवेगी ? बड़ी कठिनता से तो तुम इतनी कृपा करने लगे हो। कहो ! क्या यह ज्ञान दान दोगे ?

क्या कहा—मैं क्या दूंगा ? मैं, प्रभो ! मैं क्या दूंगा ? रुपये मेरे पास नहीं, रोटी घर में है, कपड़े बाजार में हैं। मैं तो तेरे द्वार पर खाली हाथ खड़ा हूं, कोई ऐसी वस्तु न मांगना प्रभु जो मुझे आपकी शरण त्यागकर कहीं और से लानी पड़े तो और फिर मैं यह अवसर ढूंढता ही रहूं।

क्या कहा ? तेरा शरीर नहीं चाहता, तेरा धन तथा वस्त्र नहीं चाहता; यह तो मैंने ही तुझे दिये हैं। तू केवल अपनी मैं ही मुझे दे दे। तो तुझे ज्ञान प्राप्त हो जाएगा और तेरी ज्ञानज्योति जग जाएगी।

वाह रे प्रभु वाह ! खूब कही 'मैं' तो दे दूं तुझे और मैं बन जाऊं कोरा ठन—ठन गोपाल ! फिर संसार के कार्य कैसे करूं। बाल—बच्चों को कैसे पालूं ? जीवन निर्वाह कैसे करूं ? तेरी प्रार्थना कैसे करूं ? वाह वाह प्रभो ! तू तो बड़ा कनफुकआ गुरु है। तेरा मनोभाव मैं

समझ गया कि न यह 'मैं' अर्पण करेगा और न मैं दर्शन ही दूंगा। तू तो सारे संसार को ऐसे ही भटकाता है। पर अब मैं भी तेरे पीछे ही पड़ा हूं। देखूं तू दर्शन देता है कि नहीं ? तंग आकर आप ही दर्शन देगा।

भला मैं अपनी 'मैं' तुझको दे दूं तो......'तू' तेरी 'तू' कहां समायेगी। मैं हो गया 'तू'.......तो 'तू' भी 'मैं' ही हो जायेगा। वाह ! वाह ! वाह !! वाह !!! अब मैं संमझ गया अहा।

मैं तू हुआ तू मैं हुआ और अन्य कोई ना रहा।
कैसे करे कोई भला, मैं और हूं तू और है।
मैं तन तो तू है आत्मा, मैं आत्मा तू परमात्मा।
मैं तुझ में रमा, तू मुझ में रमा,
फिर भेद तुझ में मुझ में क्या।
कैसे कहे कोई भला, मैं और हूं तू और है।
मैं फूल हूं और तू बू है मैं कोयल हूं तू कू कू है।
मैं क्या नहीं क्या कुछ है तू,
मैं कुछ नहीं सब कुछ है तू।
कैसे कोई जाने भला, मैं और हूं तू और है।

प्रभो तेरा भला हो, मार्ग तू ने सुगम ही बता दिया अब आगे मेरा भाग्य।

२६. प्रभुदेव ! मधुर ब्रह्मज्ञान का आस्वादन करावें

वाह प्रभुदेव ! तू धन्य है, तू स्वयं मधु है, तुझ में

मधु रस भरा है और जगत् संसार, जो तूने अपनी मधु -विद्या से बनाया, उसमें भी मधु ही मधु भरा है। संसारी पुरुष संसार में ही मिठास उपलब्ध करने का प्रयास करता है। जैसे च्यूंटी मिश्री को जिधर से मुंह डाले मीठा ही मीठा पाती है। यदि मनुष्य भी उस मिश्री को मुंह लगाए तो उसे भी मीठा ही लगता है।

तेरा भक्त भी मधुविद्या (ब्रह्मज्ञान) से मधुरस ही चखना चाहता है। आप किसी भी याचक को इच्छित मधुरस से वंचित नहीं करते। भक्त हो अथवा संसारी पुरुष हो। क्या आश्चर्य है। हे देव ! कि तूने भक्तों के लिए यह मधु छत्ता बनाया, जहां से यह मधु रस (अमृत रस) भक्त चूसता है यह मधुछत्ता इसके निज सिर में सहस्त्रधार चक्र ही है जिसके एक–एक छिद्र से भिन्न–भिन्न प्रकार का भीना रस (ब्रह्मज्ञान–भक्ति रस) वह पान करता है या आप पान कराते हो। यह सहस्त्रधार चक्र ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सहस्त्राक्ष वेदों में तुझे कहा गया। ऐसे योगसाधक को इस अपने देवलोक में समस्त देवताओं की दिव्यशक्तियों में निवास करावें। जिधर यह दिव्य दृष्टि अपने देवता की ओर खुले उसका सारा ज्ञान साक्षात् करावे।

२७. पतितपावनी मां को कहां बिठाऊं ?

ओं अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि।। साम० ६६०

हे मां ! भक्त और योगी तेरा आह्वान करते हैं, उनमें तो सामर्थ्य होती होगी तुझे बुलाने अपने स्थान पर बिठाने की, परन्तु मैं तो मां ! असमर्थ हूं। तेरा आश्रित हूं। मैं कहां बुलाऊं और कहां तुझे बिठाऊं ? तू तो मुझे बिठा सकती है, गोदी में बिठा सकती है कमर पर उठा सकती है, बगल में दबा सकती है, छाती पर लिटा सकती है। मैं तुझे कहां बिठा सकता हूं ? नन्हा बच्चा, अज्ञानी अबोध बालक तुझ इतनी महान् मां को कहां बिठाऊं ? बुला तो सकता हूं। पुकार भी सकता हूं, मैं तो जब पुकार करूंगा यही पुकार करूंगा मां मुझे अपनी गोदी में बिठा। मैं तो तुझे अपनी विह्वलता और व्याकुलता में बिठा सकता हूं। और तो मेरे में सामर्थ्य ही नहीं। भक्त और योगी तो स्थान भी पवित्र कर सकते होंगे। मेरा तो स्थान ही तेरी गोदी में है, तूने ही अपने लिए भी स्थान साफ करना है और मेरे लिए भी। मुझे तो तू जहां भी बिठावेगी मेरे तो अपवित्र अंग वही बैठेंगे, टिकेंगे फिर मैं क्योंकर बुलाऊं मां ?

२८. दयालु पिता अपने चरणों में बांधे रखिये

मेरे प्यारे प्रभु दयालु पिता ! आपकी अपार कृपा से मेरा यह व्रत निर्विघ्न सम्पूर्ण हो गया। इस व्रत में जिस अपनी दयालुता से मुझे भरपूर कर दिया नन्हें बालक के नन्हें हाथों में कितना कुछ समा सकता है। माता पिता तो अपनी बड़ी मुट्ठी और दोनों बुक भरकर देना चाहते हैं, पर नन्हें बच्चे के नन्हें हाथ तो जरा मात्र से भर जाते हैं। और वह उसी में गद्‌गद् हो जाता है। प्रभु देव ! मुझ अबोध बालक के मन और बुद्धि का वही हाल था। तेरी देन तो नाथ बड़े हाथों में रही, अब ज्यों–ज्यों मेरी बुद्धि और मनका आप विकास करोगे त्यों त्यों मेरी मांगें भी बढ़ेंगी। इस समय तो प्रभु देव ! आप ने जो अपना सम्बन्ध रूप अप्रकट रखकर मेरे आत्मजीवन का उत्थान व कल्याण किया। शिशुकाल से आप मेरे गुप्त पिता के रूप में मुझे अपनी शरीर जननी माता के द्वारा मेरा भविष्य उसके मुखारविन्द से आशावाद और लोरी और खेल खुशी के रूप में कहलवाते रहे और फिर मुझे गायत्री सावित्री माता की शरण प्रदान करा दी और मध्यकाल से अब तक आप गुप्त पिता और सावित्री माता मुझे धर्म और आत्मजीवन में बढ़ाते रहे। इस व्रत में आपने अपना रूप पिता का प्रकट करके मुझे प्रभु आश्रित

शब्द और नाम अर्थ का साक्षात् परिचय दिया। ओह ! मेरे इष्ट देव ! सविता ! मेरे प्रभु सच्चिदानन्द गुरुदेव ! मेरे सच्चे पालक पोषक और आत्म–ज्ञान के प्रेरक और आत्मबलदाता ! अब मेरी यह विनय है कि संसार के लोग तो बन्धन से छूटना चाहते हैं पर मैं अपने बन्धन की प्रार्थना करता हूं। मुझे अब अपने चरणों के साथ अपने प्रेम की डोरी से ऐसा बांध रखो कि मैं छूट ही न सकूं। सदा आपके चरणों के साथ बन्धा ही रहूं जैसे मायावी पुरुष अपने पुत्र परिवार को धन से बांधे हुए रखते हैं। छुड़वाने पर भी वह नहीं छूट सकते। जैसे नन्हा बच्चा माता पिता की जरा सी ओझल दृष्टि में घबरा जाता है, व्याकुल हो जाता है, ऐसे मुझे अपनी दया प्रेम के नाते से बांध रखिए। बस मेरी यही प्रार्थना है, इसे स्वीकार कीजिए, सबका बेड़ा पार कीजिए।

२६. प्रभुदेव आपसे कोई सम्बन्ध जीव का पूरा नहीं उतरता

हे मेरे प्रभो ! मैं बहुत विचारता रहा कि तू मेरा क्या लगता है ? कहने को तो मैं तुझे सब कुछ कह देता हूं, पुकार लेता हूं पर आज तक जनती प्राप्ति नहीं हुई। मैं कहता हूं तू मेरा गुरु है, परम गुरु है। इधर मैं देखता हूं कि मैं कोरे का कोरा हूं। जिसका तू गुरु हो उसे फिर

अज्ञान शेष रहे ? असंभव है–२। इसलिए प्रभो ! जब मैं तुझे गुरु पुकारता होऊंगा तो सुनने वाले अवश्य हंसी उड़ाते होंगे। मैं तुझे आचार्य के नाम से भी कभी–कभी संबोधित करता हूं। पर प्रभु यह भी एक मन बहलावा है। जो तुझ आचार्य की शरण में हो फिर उसके सत्याचरण में कमी कहां ? मैं तो अभी सत्य के पुजारियों के पांव के तले की धूलि माथे पर लगाने को ढूंढ रहा हूं। यह सम्बन्ध भी मेरा तेरा जुड़ा हां मालिक भी तुझे ही बनाता हूं, पर नोकर होकर मालिक की आज्ञा न माने वह नोकर और वह मालिक कैसा ? मैं तो तेरी अनेक आज्ञाओं को टाल जाता हूं, और बेपरवाही कर लेता हूं। भगवान् यह नाता भी बेमेल है। तुझे अपना राजा और न्यायाधीश भी जानता हूं, परन्तु वह प्रजा जो राजा के सम्मुख उसकी विद्रोही बनी रहे और प्रजा होकर तुझे तेरा 'कर' न देवे वह प्रजा नहीं हो सकती। मैं अभी तेरी प्रजा कहलाने का अधिकारी नहीं। मैं तुझे ऐसा तो बार–बार पुकारता हूं– हे मेरी माता ! हे मेरे पिता ! इससे तो मुझे स्वयं ही लज्जा आती है। यदि तेरा पुत्र होता तो कभी तेरी गोद में न बैठता ? तेरी प्रेमभरी लोरी का आनन्द न लूटता ? तुझ से रूठ न जाता ? और तुझे मनाने में व्याकुल कर देता ? तू मेरी माता नहीं बनी, और पिता भी नहीं बना।

नहीं तो तेरे कंधों पर सवार होता और तू आप मुझे उठाएं फिरता और मुझे कहता मेरे सिर से अपना सिर मिला और मैं तुझ से बढ़ गया—और तू आप ही खुश होकर स्वीकारता कि हां पुत्र, मेरे प्यारे पुत्र, मेरी प्यारी आत्मा, तू मुझ से बढ़ गई। फिर मैं सोचता हूं आखिर तू कुछ तो मेरा लगता ही है।

यही उत्तर मिलता है कि अवश्य ही तू शाह है और मैं देनदार, परन्तु पिता ! शाह कैसा जिसे लेने वाला वापस ही नहीं देता। इस बात का अभी—अभी उत्तर मिला है जब कि यात्री—गाड़ी सात बजे शाम को अपनी मंजिल पर पहुंचने के लिए उत्तर की ओर चल पड़ी है कि तू शाह है पर तेरा नाम लोभीशाह है। मैं अब समझा कि ठीक है, कि लोभियों के बाजार में दिवालिये कब भूखे मर सकते हैं ? दिन—दूनी रात—चौगुनी उनको सम्पत्ति मिलती है। उधार मिलता है। अच्छा तेरा विचार है कि संगीन -सूंद से वसूल करूंगा।

३०. दयालुताओं के प्रति कृतज्ञता आर्द्रता

हे दयानिधे ! तेरी दया बेअन्त है। तेरी कृपा महती है। तेरा कोटान कोट धन्यवाद गाता हुआ तुझे बारम्बार नमस्कार करता हूं। मेरे प्रभो मैं तेरी दयाओं को क्या गिनाऊं मुझ पर तो तू बहुत ही विशेष दया करता है। मैं

समझता हूं यह तेरी ऐसी दया केवल मेरे लिए ही है। मैं तुलना कर रहा हूं तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा है कि यह तेरी विशेष दया मेरे लिए ही है। परन्तु और भी अनेकों पर ऐसी तेरी दया होगी। मैं तो शिशु की भान्ति ऐसा समझ रहा हूं जो पिता के कंधे पर बैठा हुआ चान्दनी रात्रि में चलता हुआ कहता है पिता से चांद मेरे पीछे–पीछे चल रहा है किंचित् ठहर जाओ। पिता ठहर जाता है। बच्चा कहता है कि पिता जी देखो चांद भी ठहर गया। यद्यपि वह चन्द्र सबको अपने पीछे–पीछे चलता दीखता है।

यही तो प्रभो तेरी विशेषता है। जिनपर तेरी दया है वे ही सब ऐसा मेरी भान्ति समझते होंगे। हे नाथ ! मेरे लिए तू कितने सरल मार्ग बना देता है, तेरी दया कैसे बेअन्त न कहूं। मैं जब बाल्य–काल से आज पर्यन्त अपने जीवन की घटनाओं पर दृष्टिपात करता हूं तो यही पाता हूं कि तू अपने आप मेरा मार्ग स्वयं स्वच्छ करता चला आ रहा है। मैं निस्संकोच बिना विचारे अंधाधुंध चला आ रहा हूं। पीछे मुझे ज्ञात होता है कि तू स्वयं अपनी उंगली से जैसे बच्चे को पिता ले चलता है और बच्चे को कुछ भी पता नहीं होता कि क्यों और कहां जा रहा है। आगे तो मैं तेरी दयाओं की तुलना अपने जैसे मनुष्यों से

करता रहा और तुझे धन्यवाद देता रहा आज मैं तेरी बेअन्त दयाओं की तुलना उच्चकोटि के मेरे श्रद्धेय महात्माओं (जिनको देखकर अथवा स्वप्न में दर्शन करके अपना सौभाग्य समझता रहता हूं) से करके यही कह रहा हूं कि तेरी दया मुझ पर विशेष है। हे मेरे प्रभो ! जहां इतनी अपार दया मैं आज अनुभव कर रहा हूं वहां मैं विनय–पूर्वक प्रार्थना करता हूं। मुझे कारण प्रतीत नहीं होता। जिस वस्तु को मैंने त्याग दिया हुआ है अथवा प्रतिज्ञा की हुई अथवा उपयोगी से उपयोगी वस्तु भी जिन्हें मैं बोझ समझता हूं अथवा व्यर्थ का प्रयोग समझता हूं उनके न मिलने पर किसी के न पूछने पर मुझे अति हर्ष होता है। कभी–कभी जानबूझकर तेरे दरबार में प्रार्थना किया करता हूं कि मुझे कोई व्यक्ति कहे ही न, पूछे ही न। जब ऐसा हो जाता है तो मैं तेरा धन्यवाद करता हूं। जहां मैं अपने लिए आवश्यकता समझता हूं और दूसरे का कर्त्तव्य समझता हूं उसमें जब दूसरा उपेक्षा करता है अथवा जानकर, अथवा संभवतः मुझे इस वृत्ति का समझकर अथवा मेरे किसी परिचित मित्र से पूछकर वह मेरी आवश्यकता अथवा आशा के विरुद्ध पाया जाता है तो अवश्य मुझे बहुत महसूस होता है। एक बार नहीं, दो बार नहीं, अपितु रह–रहकर कई बार

स्मरण आता है। आज इस समय मैं बहुत ही महसूस कर रहा हूं कि प्रभु मुझमें यह त्रुटि है, न्यूनता है, दोष है, बहुतेरा मन को समझा रहा हूं कि भोले तू क्यों अपने प्रभु से वृत्ति हटाकर ऐसा चिन्तन कर रहा है। अपने प्रिय के नाम दान को अपनी जिह्वा से हटाकर अन्यों की त्रुटि निकालने में जिह्वा के अग्र भाग को चला रहा है। कुछ मिनटों के लिए रुक जाता है, तुझ में लग जाता है। फिर उसे वही रट स्मरण हो जाती है।

देव दया कीजिए अब मैं तेरी दयाओं को स्मरण करके कह रहा हूं, कि जब तू गणपति और लाजपत के लिए जतोई गया तो किस से यात्राव्ययार्थ मांगा था ? किसने तुझ से पूछा ?

३१. परमेश्वर की दया से ही सूखे मस्तिष्क हरे होते हैं

हे प्रभुदेव ! वेद में स्थान–स्थान पर आदेश है वेद मन्त्रों द्वारा स्तुति करो, अर्चना करो। वेद मन्त्रों से अमृत रस पान करो ! रस तो कभी–कभी आता ही था मगर समझ में आई तो तेरी ही प्रेरक शक्ति द्वारा कि मन्त्रों में क्यों अमृत रस सचमुच भरा है। ऋषि–मुनि जीवन पर्यन्त एक सूक्त में मस्त रहते थे। हे प्रभो ! आज पाया कि अमृत रस तो प्रत्येक मन्त्र में है मगर मुझे तो यह रस

उसी मन्त्र से झरता और बार–बार चूता हुआ शब्द–शब्द में टपकता और रोमांच को भरता दिखाई देता है जिसकी मुझे ठीक समझ आगई और वह समझ भी मेरी उद्देश्य पूर्ति दुःखनिवृत्ति का पूरा साधन नज़र पड़ी और फिर तूने स्वयं अपनी अपार दया से उसी मन्त्र और शब्द–शब्द के रस को मेरे उसी ही स्थान और नाड़ी में बहा दिया वह भर गया और उमड़–उमड़ फूट–फूट पंच नदियों से बाहर बहने भी लग पड़ा। अन्दर और बाहर रस आस्वादन के सिवाय शब्द और शब्द के अमृत रस के और पता ही न लगा। यह भी देख लिया। अर्थ की समझ तो आई उद्देश्य पूर्ति और दुःखनिवृत्ति का साधन भी समझ लिया–परन्तु तेरी दया विद्यमान न होने से वह खुश्क झरना सा सूखा, फीका प्रतीत किया भगवन् तेरी दया ही प्रमुखं है। तेरी दया हो जाए तो सब सूखे भी हरे–हरे हो जाते हैं। आज साक्षात् पाया कि वेद विद्या विज्ञान सरस्वती क्यों कहलाता है ?

'स' सुन्दर सुहावना मीठा 'र' रसवाला, सरस्वती याग करने वाले सदा मस्त रहते हैं। वाह रे ! दयानन्द ! वेद का पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना तूने क्यों आर्यों का परम धर्म लिखा।

३२. भक्ति उपासना दु:ख में भी प्रभु दया की प्रतीति का होना

हे प्रभुदेव ! तेरी रहमत का कोई अन्त नहीं—जो तू मुझ पर करता है। मुझे २—६—७२ को चोट का लगना और सुन्दरपुर में लगना—का रहस्य आज तूने अपनी अपार दया से सुझाया। चोट तो मुझे अपने पूर्व कर्मफल रूप में लगनी ही थी—और ठीक उसी दिन उसी समय लगनी थी। २—६ का प्रोग्राम मेरा पहले अपने विचार से यमुनानगर का था, अगर अपने विचार से वहां होता तो ऐसी चोट लगने पर लाला खैरातीराम जी को परेशानी होती—वह अस्पताल में दाखिल कराते चाहे वह सब सेवा करते, मगर वे अकेले थे। अस्पताल के हालात के अधीन रहना पड़ता। कोई सेवा करने वाला न होता, और प्रेमियों को बहुत दूर से कष्ट और खर्च उठाना पड़ता। लाला खैरातीराम जी को भी बहुत कष्ट सबका बर्दास्त करना पड़ता। तसल्लीबख्श इलाज न होता। और यह शिविर साधना भी रुक जाती, और दूर—दूर से आने वालों को कष्ट होता या इनको समाचार भेजने पड़ते, तब भी सबको न मिल सकते। वाह रे प्रभु ! तेरी कितनी अपार दया हो गई कि सब प्रोग्राम कैन्सिल होकर सुन्दरपुर पहुंचने की प्रेरणा हुई २—६ को सुन्दरपुर में चोट लगने

से मुझे तो चोट लगी मगर दूसरों को परेशानी नहीं उठानी पड़ी—डाक्टर ऋषिकेश जी जहां डॉ० मुलिज (चिकित्सक) मेरे हैं वहां सेवक—प्रभु का काम भी करते हैं और माता—पिता का फर्ज भी अन्जाम देते हैं—खर्च अखराजात और ऊपर की सब सहायता तकलीफ माता—पिता को ही करनी पड़ती है—वह भी वह खुद ही करते हैं, और फिर अपने आश्रम में साधना भी चल रही है—और अपने सब आदमी सेवा भी मेरी कर रहे हैं और डॉ० साहेबान भी बहुत से सत्संगी देखभाल करते हैं सबको सहुलियत रहती है। यही अपार कृपा प्रभु की समझ रहा हूं। मेरे प्रभुदेव ! कर्मफलदाता—रूप से मेरे गोडा में निवास कर रहे हैं—और मेरे पाप कर्मों को उतरवा रहे हैं और प्रभुदेव स्वयं मेरे प्रेमियों को खींचकर इस घुटने की सेवा करा रहे हैं—इसलिए उन सब प्रेमी सेवा करने वालों की सेवा करने में आनन्द, उस आनन्द रूप से प्राप्त हो रहा है। क्या प्रभु लीला और अपार दया है।

३३. उपासना प्रार्थना नीरस बने तो प्रभु दरबार में पुकार करो

हे प्रभु ! आज क्या हो गया ? घण्टों से खाली जाप और कोरी प्रार्थना नीरस बन रही है—आप समवयस्क

होते तो चरण–कमल पकड़ रखता, माथा चरणों में तब तक टिकाये रखता, जब तक आप स्वयं न उठाते। वाणी के शब्द भी हमारे आपको रिझाने में असमर्थ हैं। आत्मभाव में आप तक पहुंच हो सकती है। अब आत्मा तो है पुकार कर रही, मगर इसके भावों का भी प्रभाव नहीं पड़ रहा। अब मालूम हुआ, कि मेरा तो कुछ भी नहीं। आप जैसे औषधि से सत्ता खींच लेते हैं, और वह असर नहीं करती, ऐसे ही आप जब स्वयं आत्मभाव में प्रविष्ट होते हैं तब वह भाव आर्द्र का कर देते हैं–और भक्ति को रसमय बना देते हैं। अब मैं तो प्रभु ! तेरा आश्रित हूं, और भाव कहां से लाऊं ? भगवन् ! कृपा करो, दया करो। उठाते–जगाते भी आप हो, उत्साह से अपने भजन चरणशरण में बिठाते भी आप हो। फिर प्रार्थना–उपासना में मेरी आत्मा में वह भाव क्यों प्रविष्ट नहीं करते हो ? मैं तो इतना ऊंचा नहीं पहुंचा कि कह दूं–अच्छा ! तेरी जैसी इच्छा है–वही ठीक है और कामों में तो कह देता हूं, इस भजन प्रार्थना के लिए ऐसी अभी बुद्धि नहीं बनी। नाथ ! मैं तो केवल मात्र तेरे तरस पर पला हूं–बढ़ा हूं–पढ़ा हूं–मेरा तो अपना लंगोट तक भी नहीं कि सुख के सामान तेरी प्रेरणा से तेरे भक्त, भक्तिभाव से पहुंचाते रहते हैं। तुझे स्वयं समझ में नहीं आती, कभी–कभी तू क्यों ऐसा नीरस

कर देता है। कारण सोचता हूं नजर ही नहीं आता। दयानिधे ! दया करो, दया करो, दया करो।

३४. प्रभु-आश्रितों की चार श्रेणियां

हे मेरे दया के भण्डार प्रभो ! मुझे बहुत बार लज्जा आती है जब कोई मनुष्य लाचार, विवशता का रूप बना याचक के रूप में कुटिया पर आकर अथवा चलते—चलते मार्ग में तेरे नाम पर याचना कर देता है कि प्रभु के वास्ते "मैं निर्धन हूं मुझे कुछ दो" कभी तो लाचार विवश की मनमांगी वस्तु मेरे पास नहीं होती, कभी मेरा दिल नहीं करता और पश्चात् में पछताता हूं कि तू भी तो प्रभु आश्रित और वह लाचार भी तेरी भांति प्रभु—आश्रित है। तेरे ही प्रभु का नाम लेकर अपनी अधिकारिता जतला अपना हक मांगता है। तूने क्यों नहीं दिया ? जब तेरे पास भी था।

भगवन् ! अनेक बार ऐसा हो जाता है और मैं डावांडोल हो जाता हूं। मेरी बुद्धि मुझे कोई मार्ग नहीं दिखाती। मैं आपके ही आश्रित हूं। कृपा करो मेरा मार्ग—प्रदर्शन करो। प्रभो ! भक्त प्रभु के नाम पर बिका हुआ होता है उसका शरीर, उसका मन, उसकी आत्मा और उसकी सारी सम्पत्ति (सर्वस्व) उसका प्रभु के नाम पर अर्पण होता है। जैसे देशभक्त का तन—मन—धन सब

देश अर्पण होता है, हे सविता देव प्रभो ! मेरा तो पुनः कोरा जीवन हुआ न तो मैं किसी समाज के काम आया न किसी जाति को दिया न देश पर मर–मिटा, न तेरे नाम पर अर्पण हुआ। जब एक तांबे का पैसा देने से भी कतरा गया तो फिर मेरा कैसा पूजन भक्ति तुझे क्या प्रतीत होता होगा। जब मैं तेरे नाम की ओट, तेरे नाम का आश्रय लेकर याचक से कान अनसुने और मुख मोड़ कर चल देता है। आज तो प्रभो ! तेरे चरणों में बैठ यह बात अचानक उभर रही है। जब वस्तु पास नहीं होती और कोई याचक मांगता है तो शरम आ जाती है कि मेरे पास नहीं। मैं याचक को रंगली लौटा रहा हूं। परन्तु जब पास होने पर कतराता हूं तो बाद में लज्जा आती है। मेरी गायत्री (इष्ट) के सविता देव गुप्त प्रेरक प्रभो ! मेरा मार्ग–प्रदर्शन करो, मेरा मार्ग–संरक्षण करो।

यह लज्जा झूठी लज्जा है। अपने मन से उठ रही है। अपनी Position (स्थिति) के अहंकार के कारण लज्जा है कि मैं प्रभु आश्रित हूं और फिर प्रभु की वस्तु को प्रभु नाम के आश्रयवालों को नहीं देता अथवा मेरे दर से याचक खाली जा रहा है।

प्रभु आश्रित का चिह्न है प्रभु के अतिरिक्त और किसी से न मांगना, मुख से न मांगना, हाथ से न मांगना,

आंख से न मांगना, प्राण से श्वास से न मांगना अपितु संकल्प से भी न मांगना। यह संकल्प भी न करना कि अमुक वस्तु अमुक मनुष्य मुझको ला देवे। उत्तम सच्चा प्रभु—आश्रित तो वह है जो छोटे की भान्ति कोई इच्छा प्रकट नहीं करता, वह इच्छा ही नहीं करता। माता अपने आप उसकी आवश्यकताओं, इच्छाओं की समय पर सुधि लेती और देती है।

मध्यम प्रभु—आश्रित वह है जो बड़े बच्चे की भान्ति सब कुछ अपनी मता से मांगता है। और माता उसे उचित अवसर पर देती है। कभी इन्कार भी कर देती है परन्तु बालक दोनों में सन्तुष्ट रहता है। माता की इच्छा को अपने लिए उत्तम और उपयुक्त समझता है। ऐसे ही आश्रित है। परन्तु जैसे कोई कोई बालक अपनी मांग न मिलने पर रोता, दुःख करता, हठ करता है। मां उसे पूर्ण तो कर देती है परन्तु बालक का संस्कार बिगड़ जाता है। ऐसे ही आश्रित का भी बिगड़ जाता है।

अधम आश्रित वह है जो उस बालक की भान्ति जो अपने माता—पिता के सम्बन्धियों, मित्रों के पास जाता है इस इच्छा (भाव) से कि वह इसको इसके माता—पिता के सम्बन्ध पर खिलाएंगे, पिलाएंगे, पैसे देंगे।

निकृष्ट और नीच आश्रित वह है जो अपने माता—पिता के सम्बन्ध पर मांगते हैं और लोक—लज्जा से उन क

मिल जाता है। दानी लोग दे देते हैं। यह दर्जा आश्रित का अपने आश्रय दाता को बदनाम करने वाला होता है। यह प्रभु–आश्रित नहीं होते, यह ईर्ष्यालु, लोभी, आलसी, कामचोर देश के लिए बोझ तथा अपने भविष्य को धूलि में मिलाने वाले। बजाए आश्रित के भिखारी कहलाते हैं किसी की दृष्टि में मान की नज़रों से नहीं देखे जाते।

हां इनसे कटु वचन से इन्कार करना अथवा बोलना तो एक पाप खरीद करना है। परन्तु न देना इनकी मुख मांगी वस्तु को जो इससे किसी दूसरे उत्तम काम में लगने की सम्भावना से रखी हुई है पाप नहीं, लज्जा नहीं करनी। प्रयत्न करो कि कोई ऐसा याचक तुमसे खाली न जाए। ऐसा भूखा न जाए जो तुम्हारा प्रश्न सुझाने आया हो। तथा मैं इसी रूप में बस रहा हूं इसलिए पहचान न कर सकने के कारण मेरे भक्त किसी को खाली न भेजते थे—धन नहीं तो अन्न, अन्न नहीं तो छोले, छोले नहीं तो पानी, पानी नहीं तो मधुर वाणी से याचक को प्रसन्न करते थे। तथा जब वस्तु ही पास नहीं तथा तुम जो रखते नहीं मांगने वाला भिक्षु है तो भिक्षुक को किसी और स्थान से मिल ही जावेगा। हां समझो कि प्रभु परीक्षा ले रहे हैं। भारी भूल है भगवान् अपने भक्त की ऐसी परीक्षा नहीं करता। जब उसे विदित है कि यह वस्तु इसके पास

नहीं। भक्त तो भगवान् की परीक्षा भले करे परन्तु भगवान् तो तब करे जब वह देवे और फिर अपने लिए मांगे। जब माता–पिता अपने बालक की परीक्षा लेते हैं उसको मिठाई दी, पैसा दिया पुनः हाथ पसारकर मांगा कि मुझको भी दो। भगवान् तो वास्तव में माता–पिता का स्वरूप है। भक्त और भगवान् का रिश्ता माता और पुत्र का रहता है।

३५. भक्त को विकल्प नहीं परन्तु सन्तोष ही शोभ देगा

ओं चित्रं देवानामुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।। यजु० ७।४२

आहा ! क्या अद्भुत परमात्मा है। जो जंगम और स्थावर जगत् में व्यापक, विद्वानों को श्रद्धा–पूर्वक प्राप्त और अति बलवान् है। स्वयं प्रकाशवान् होकर सर्वत्र और श्रेष्ठ पुरुषों तथा बिजली का भी प्रकाशक है। प्रकाश सहित तथा प्रकाशरहित लोकों और उनके मध्यस्थ लोकों को चारों ओर से धारण कर रक्षा करनेवाला है।

प्रभो तू कैसा है ? जो तू चाहता है वही होने देता है। जिसे तू नहीं चाहता वह लाख यत्न करने पर भी नहीं होने पाता। भला मैं जो तेरा आश्रित बना, क्या लाभ

मुझे हुआ ? जब तेरा आश्रित भी अपनी इच्छा शुभेच्छा पुण्य संकल्प को ही पूर्ण न करा सके ?

अरे आश्रित ! तू भूल कर रहा है। जब तू मेरा आश्रित बन गया फिर इच्छा और संकल्प कैसा ? चाहे शुभ भी हो। जब शुभ किया तो कभी अशुभ भी वासना उठेगी। तो क्या मैं तेरा और तेरी इच्छाओं का बाधित हो जाऊं ? मैं तेरा आश्रय हूं या तेरी इच्छाओं का भी आश्रय हूं ? इस भूल को निकाल दे।

आश्रित का काम संकल्प विकल्प करना नहीं है। तेरा शरीर मेरे आश्रित है तो भोग स्वतः अदृष्ट पहुंच जावेगा, जैसा इसको अनुकूल होगा। तेरा अनुकूल या प्रतिकूल कहने का अब अधिकार नहीं—तुझे वस्तु के अच्छे—बुरे कहने का अधिकार नहीं। जब आश्रित प्रभु आश्रित बनना चाहता है, तेरे मन में संकल्प अपना ही उठता रहा तो संकल्प तेरे आश्रित होगया। जब तू स्वयं आश्रित है तो तू क्यों किसी दूसरी वस्तु को अपने आश्रित रखता या समझता है। बस जब मन से ऐसा संकल्प—विकल्प हटा दिया तो अब मन का गिरना या उठना क्या रहा ? उसकी तो अन्तिम अवस्था पहुंच गई।

शेष रहा आत्मा, वह तो है ही पहले से मेरा, तू कौन लगता है ? किसी का क्या लगता है ? शरीर का तू क्या

लगता है ? जब शरीर को तू बना नहीं सकता, उसका भोग तेरे ज्ञान में नहीं है, फिर तू शरीर का क्या लगा ? तनिक सोच भी। शरीर तो मेरी दिव्य शक्तियों का अंश है, मन भी तेरा नहीं। तू मन का क्या लगता है ? तेरा और उसका मेल ही नहीं बनता। तू अमर, वह मरणशील। जैसे तू मेरी गोद में बैठ सकता है वह भान भी नहीं कर सकता—तू तो आत्मा है। मेरी निज आत्मा है। फिर तुझे काहे की फिकर और काहे की चिन्ता ?

हे भगवान् ! महिमा महान् ! करुणानिधान ! धन्य हो, धन्य हो। मैं तो आज १५ दिनों के गिले और शिकायतें इकट्ठी किये बैठा था कि तूने मुझे व्रत में बिठा दिया और फिर मेरी सुध भी न ली—मेरा व्रत ऐसे ही चला गया। चन्द्रमा ने पूर्णता प्राप्त कर ली, तेज और सौंदर्य में (पूर्णता) प्राप्त कर ली और मैं तेरे चरणों में बैठा १५ दिन में मलाल (उदासीनता) और जवाल (अवनति) में मुझे हलाल (मृत्युप्राय) कर दिया, न कोई विशेष रहा, न प्रेम के आंसू बहाये, न कोई रंगीले गीत गाये, न कोई गुटका लिखा, न पिछले लिखे को संवारा। तूने उल्टे ऐसी झाड़ दी कि मेरी सारी शेखी (गर्व) झड़ गई। फिर भी धन्यवाद है कि आज तो अपने रूप, अपनी शान का भान कराया। मुझे आश्रित शब्द की समझ आगई यही पर्याप्त है।

भगवन् अब कृपा करो जैसा उपदेश महाराज ने प्रदान किया वैसा बना दो। वैसा बना दो जिससे न तुझे गिला सुनना पड़े, न मुझे गिला करना पड़े। तेरे मद (नशे) में मस्त हो जाऊं।

३६. प्रार्थना २०० दिन के मौन व्रत खोलने पर

ओं ओं ओं ओं परब्रह्मपरमात्मने नमः

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, सब सुखों के दाता परमेश्वर, सकल दुःखहर्ता, विघ्नविनाशक, सब सुखों के भण्डार प्रभो ! कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन्, दुर्वासनाओं, कुचेष्टाओं, कुसंस्कारों, दुःख दर्दों, क्लेशों, संकटों और पीड़ाओं को, दुर्दिनों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हमको प्राप्त कराइए।

हे दयालु देव ! आज का दिवस रविवार के पवित्र दिवस के प्रातःकाल के सुन्दर और सुहावने समय में इस भक्ति साधन आश्रम की यज्ञशाला के पवित्र स्थान पर शुक्ल–पक्ष की सप्तमी तिथि को हम सब तेरे अबोध बालक तेरे पवित्र चरणों में नतमस्तक होकर प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! आपका आश्रित यह जीव, यह शरीर जो आपकी पवित्र प्रेरणा से आप के पवित्र चरणों में निरन्तर आपकी दात को प्राप्त करने के लिए २००

दिवस एकान्त में रहा, कल उसकी समाप्ति और आज व्रत के खोलने के लिए इस निमित्त से सब यज्ञ–प्रेमी, वेद और धर्म–प्रेमी मुझे आशीर्वाद देने के लिए तेरे द्वार का आश्रय लेकर उपस्थित हुए हैं। हे दयालु देव ! यह पवित्र वाणी इसलिए है कि तेरे नाम का उच्चारण करती है, तेरे वेद की अमृतवाणी का उच्चारण करती है, तेरे नाम की महिमा का गान करती है, इसलिए यह तेरी शक्ति और ज्योति से पवित्र हो जाती है। हे दयालु ! वाणी, यह मनुष्य का स्वत्व है, बिना वाणी मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता, मनुष्य को मनुष्य बनानेवाली, मनुष्य को देवता बनानेवाली और तुझे इस प्रकार खींचने वाली इस वाणी में वह चुम्बक है जो मुझे इस प्रकार खींच लेता है जैसे एक बिल्कुल नन्हा नादान बालक अपनी मंगलमयी माता को खींच लेता है। वही वाणी २०० दिवस तक मेरे उत्थान और कल्याण के लिए आपने बन्द कर दी।

वाणी बिना बल के नहीं बोल सकती। धनी लोग बोलते हैं तो धन के बल पर उनके शब्द निकलते हैं, उनकी वाणी से उनका अहम् और मम प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है। एक अहंकारी राजदरबारी और कर्मचारी जब बोलता है तो वह शासन के बल पर बोलता है, उसकी वाणी प्रत्यक्ष प्रकट करती है कि वह अधिकारी और

शासक है। जब वकील या बैरिस्टर बोलता है तो वह अपनी बुद्धि के बल पर बोलता है उसकी वाणी उसकी बुद्धि को ऐसा प्रकट करती है जो अपनी छाप लगा देती है। विद्वान् की वाणी विद्या के बल पर बोलती है। साधारण आदमी जब बोलता है वह प्राण के बल पर बोलता है। ऐ ओ नाथ ! मैं किस बल पर बोलूं ? मेरे पास न धन का बल, न शासन का बल, न बुद्धि का बल, बोलूं तो किस बल पर बोलूं।

हे दयालु देव ! मैं तो प्रभु आश्रित हूं, प्रभु तेरे ही बल पर वाणी बोल सकती है, नहीं तो इस में सामर्थ्य क्या है ? हे देव तू बल दे, क्या बल दे, अपना बल दे। तेरा बल क्या है ? तू सर्वशक्तिमान् है, तेरी वाणी सत्य और मधुर है, सत्य और प्रिय है, सत्य और कोमल है। तेरी वाणी शुद्ध है, तेरी वाणी सत्य, शुद्ध और विशुद्ध है, निश्छल और निष्कपट है, दम्भ और फरेब से सदा रहित है, तेरी वाणी अहंकार और स्वार्थ से रहित है। हे देव ! यदि तेरा आश्रित ऐसी वाणी बोले तो प्रभु तेरे बल पर बोले, यदि तेरा बल नहीं है तो अनृत अप्रिय कटु कठोर असभ्य अैर अशुद्ध बोले।

हे देव ! तेरा आश्रित तो इसलिए एक भक्त होता है कि अपने प्यारों के संसर्ग को छोड़कर तेरा सहवास

करता हुआ तेरी वाणी को प्राप्त करे। दयालु देव ! तेरी तो आंखें नहीं कि प्राप्त करें, तेरे कान नहीं कि हम तुझे उनसे प्राप्त कर सकें। दो चीजें प्रसिद्ध हैं एक तो तेरी वाणी ही है जो प्रसिद्ध है और दूसरा तेरा बनाया हुआ संसार प्रत्यक्ष हैं और उसे भी तेरी वाणी प्रकट करती है।

हे देव ! संसार के पदार्थों का तो मैं एक नमूना हूं मेरे केश, मेरा सिर, मेरी आंख, मेरे कान, यह समस्त जगत् के देवता के प्रतिनिधि हैं। मेरा पिण्ड ब्रह्माण्ड का एक खाका है जो ब्रह्माण्ड को दर्शाता है और मेरी एक वाणी जो केवल मुझे प्रकट करती है। मेरे शरीर का ऐसा कोई अंग नहीं जो तेरे नाम को प्रकट कर सके, जो तेरे अमृत रस का पान कर और करा सके। यह वाणी ही है जो ऐसा रस पान कर और करा सकती है। चौरासी लाख प्राणियों में किसी को आपने यह पूरा अधिकार नहीं दिया। एक मानव देह वाले को यह सत्य और प्रिय वस्तु दान ही है। हे प्रभु ! भाग्यवाला ही इसे पाकर तुझे खरीद सकता है। बिना दान इस वाणी से मोहित करके वश में कर सकता है। हे प्यारे ! मैं तो तेरा आश्रित हूं, तेरी अपार कृपा का धन्यवाद मैं क्या—क्या करूं। जब तेरा आश्रित हूं तो धन्यवाद क्या करूं जिसके पास उदरपूर्ति के लिए अपना अन्न नहीं, शरीर को ढकने के लिए वस्त्र

नहीं, पिपासा शान्त करने के लिए जल अपना नहीं, आंख को दिखाने के लिए ज्योति नहीं, जीवित रखने के लिए प्राण अपना नहीं, वह क्या धन्यवाद करेगा। मैं सदा प्रार्थना करता रहा कि जिस प्रकार सन्तान को देखने से पता लग जाता है कि वह अमुक व्यक्ति का पुत्र है, हे प्रभु देव ! मैं तेरा आश्रित हूं मेरा आहार–व्यवहार विचार आचार और मेरी प्रत्येक क्रिया से जब तक तेरा नाम न टपके तब तक मैं कुपुत्र के समान हूं इसलिए बार–बार तेरे पवित्र चरणों में इस वाणी को मौन करते हुए एकान्त वास करता हूं कि कोई घड़ी ऐसी आ जाए जो बहते हुए दरिया के अमृत का पान कर सकूं। तेरी दया हर वक्त टपकती है। असमर्थ, अयोग्य, विकारी रहने से वंचित रहता हूं। तू निर्विकार है मेरी वाणी को निर्विकार कर। हे नाथ ! इस व्रत के अन्दर तूने अपार कृपा की जितना मैं सोया उतना मैंने खोया। अब कि मैंने पूर्णरूपेण अनुभव किया कि जितना सोया उतना खोया जितना धोया उतना जोया, जितना रोया उतना मैंने बोया, जितना गंवाया उतना पाया, न सबका सब गंवा सका न सब पा सका। अभी कसर रह गई; परन्तु यह व्रत मैं हार गया जो हारा वही सहारा रहा। मैं आकार से, आयु से तो लोगों में वृद्ध गिना जाता था, परन्तु व्रत के अन्दर सदा युवा रहता था

और अपनी भावनाओं में सदा बच्चा ही बना रहा, परन्तु इस व्रत में मैं हर प्रकार से बुड्ढा हो गया इतना मैं हार गया। हे दयालु देव ! आप थके हुए का सहारा हैं। सचमुच इस व्रत में मैं थक गया। तेरे सिवा मेरा कोई आश्रय न रहा। प्रार्थना मैं प्रतिदिन करता हूं कि मेरी सब पाप–वासनाओं को समाप्त करो। तेरे गुण तेरे स्वभाव का राज्य मेरे हृदय पर हो। इस अशुद्ध हृदय पर काम, क्रोध आदि का राज्य न हो। हे नाथ ! इससे बचाओ अपने गुण, कर्म, स्वभाव का राज्य दीजिए ताकि मेरे हाथ, मेरे पांव, मेरे सब अंग तेरी आज्ञाओं का पालन कर सकें। कोई क्षण भी ऐसा न आए जब कि यह देवताओं के शुद्ध पवित्र अंश को अपवित्र और कलंकित करें, यह देव हैं–देवताओं के प्रतिनिधि हैं।

हे प्रभुदेव ! मैं किस–किस का धन्यवाद करूं। मुझ पर किसी भी प्राणी ने अपनी इच्छा से दया नहीं की किन्तु जिसके हृदय के अन्दर आपने प्रेरणा की उसने इस प्रकार सेवा और सहायता की, जिस प्रकार जब तक मां अपने बच्चे को स्तन न दे तब तक उसे शान्ति नहीं आती। वैसे ही उन महानुभावों ने जब तक मेरी सेवा नहीं की विश्राम नहीं लिया। इसलिए जिन–जिन सज्जनों ने तन से मन से धन से मेरी सेवा की वह तेरी प्रेरणा से की

है, हे प्रभुदेव ! तेरी इस अपार कृपा को देखकर मुझे प्रतीत हो रहा था कि तु प्रभु है और मैं तेरा आश्रित हूं। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को हर प्रकार का सुख देने के लिए शुद्ध भाव रखती है उस प्रकार उन्होंने मेरी सेवा की। उनको अपने आशीर्वाद से मालामाल कर। एकमात्र मैं तेरा आश्रित प्रार्थना करता हूं कि मुझे पूरा प्रभु आश्रित करो, यह जो काम करे प्रभु की प्रेरणा से करे। कोई अहं–मम उसके अन्दर न आने पावे। यही आपके पवित्र दरबार में प्रार्थना है।

ओं अद्रिवो ! उभया हस्त्याभर ! हे आवरण को दूर करनेवाले मुझे दोनों हाथों से भर दे। एक को संसार के विषय–वासनाओं के वैराग्य से और दूसरे को अपने चरणों की प्रीति से भर दे।

३७. ज्ञान बिना गत नहीं

हे दयालु पिता तेरी दया बेअन्त है तूने अपनी अपार दया से मुझे मेरी योग्यता से इतना अधिक भर दिया है और दात दे दी है कि मैं उसे समझने में भी अभी असमर्थ और अयोग्य हूं। उसके समझने में भी पर्याप्त काल लगेगा, उसके समझाने के लिए भी कोई कामिल (पूर्ण) गुरु चाहिए जो स्वयं इन सारी अवस्थाओं से गुजरा हो। बहुत पुरानी आपकी देनों का भी अब ठीक पता लग रहा

है। हजार दिन की मिली दातों में से भी कभी–कभी किसी–किसी का स्वाध्याय करने से वेद भगवान् अथवा अन्य लेखों से (जैसे १ नाड़ियों का दर्शन दिसम्बर में ४६ में किया था रंगदार। कल वेद पथ में माघ मास में पढ़ा और ६–१–४७ को रस (अमृत रस) चाटा साम० ३१४ और वेद पथ में कल पढ़ा।) परिचय मिल रहा है। आज मैं आपके ५–१–५१ के संकेत को **'ज्ञान यज्ञ'** को समझा कि मैं इन सब उपनिषदों का स्वाध्याय इस व्रत को करूं जो ब्रह्मविद्या सम्बन्धी हैं।

बिना ज्ञान सही मार्ग हजार दिनवाली अनुभूतियों से कच्चा रहा है।

३८. भक्त की तरंग।

सपुर्दम बतो खुदा खेशरा, तू दानी हिसाबे कमी बेशरा। अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में। उद्धार पतन अब मेरा है, भगवान् तुम्हारे हाथों में।।

हे भगवान् महिमा महान् ! मैं आज क्या शिकायत करूं ? तेरा तो स्वभाव ही है कि तू कभी–कभी व्रत रख दिया करता है, पर प्रभो ! वह व्रत ही कैसा ? जिसमें भूख बनी रहे। मुझे तो यदि तू व्रत भी कराए तो मैं अपने आपको तृप्त अनुभव करूं। नहीं, नहीं, प्रभो ! कहीं ऐसा भी न कर देना कि मैं अपने आपको अभिमान से तृप्त

मान लूं। उल्टा लेने के देने पड़ जाएं। यदि तू मुझे नया भोजन नहीं देता तो मुझे जुगाली ही करा दिया कर। प्रातःकाल जागते ही मेरा पूर्ण विचार था कि मेरा आज का दिन अति उत्तम व्यतीत होगा। मैंने प्रातः स्वप्न में तेरे प्यारे तपीश्वरों और ब्रह्मज्ञानी महात्माओं के दर्शन किए। पूजनीय स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज और पूजनीय स्वामी श्री गंगागिरी जी महाराज को भी सुना। जब–जब मैंने कभी स्वप्न में स्वामी जी महाराज के दर्शन किए तब–तब मेरा दिन ऐसा उत्तम व्यतीत होता रहा कि मेरी प्रसन्नता की सीमा न होती थी। आज कोई विशेषता नहीं रही और सबसे बड़ी आश्चर्यजनक भूल यह देखी कि मैंने जब स्वामी जी महाराज के दर्शन किए तो केवल हाथ जोड़कर नमस्ते ही कर दी। यद्यपि अपनी आयु में जब से स्वामी जी महाराज से मैं परिचित हूं कभी ऐसा नहीं किया। मुझे स्वामी जी के चरणों में जितनी बार आऊं, जाऊं उनके प्रति मस्तक झुकाने में मुझे असीम हर्ष होता है तथा मेरी श्रद्धा उन में इतनी है कि मेरा रोम–रोम साक्षी है। परन्तु मेरी वाणी से जब–जब उनकी ध्वनि नहीं निकलती मैं अपने आप को स्वाद–रहित पाता हूं। जब मेरे भाषण में उन्हीं की वाणी होती है तो बड़ा रस आता है। स्वामी जी महाराज ने यह भी फरमाया कि

हम तेरह दिन रहेंगे। इसमें भी मैं चकित हो गया, अन्यथा प्रसन्नता की सीमा न रहती कि अब इतने दिनों में बहुत कुछ प्रसाद मिलेगा। प्रभो ! कृपा करो एक तो दिया न, दूसरे अवज्ञा मुझ से कितनी कराई। मैं तो जाग्रतावस्था में भी तेरा आश्रित हूं तो फिर स्वप्न में अपनी क्या शक्ति है। दीनबन्धु प्रभो ! अपने आश्रित की आप लाज मेरी न रखोगे तो और कौन रखेगा ? प्रभो ! कृपा करो दया करो। मेरे पास रखा ही क्या है ? तेरी पवित्र वेदवाणी को मैं लोगों में कैसे प्रकट कर सकता हूं जब तेरे प्रसाद से मैं वंचित रहूं। जो तू ताजा देता है तो मैं उसे अपने भाइयों की भेंट धर सकता हूं। प्रभो ! अपने नाम की लाज रखो। ऐसी पवित्र वेदी के ऊपर यज्ञ, महायज्ञ, ब्रह्मपारायण यज्ञ की वेदी के ऊपर जनता से शरमसार न होना पड़े। कृपा करो......ओहो...... आश्रित फिर भूल कर रहे हो—तुमने शरमसारी मानी तो अभिमान और क्या होगा ? यही अभिमान है आश्रित को क्या ? जैसे प्रभु चाहे कराए। आश्रित तो यन्त्र होते हैं। धन्य प्रभो—तेरी इच्छा पूर्ण हो।

३६. प्रभु का स्पर्श कैसे हो

आओ ! आज राज को समझो। सबसे पहले प्रार्थना के स्वरूप को समझो। प्रार्थना हम क्यों करते हैं। हम

भगवान् के सामने दीन होकर क्यों बोल रहे हैं ? कोई ऐसी कमी है जिसने हमको दीन और पराधीन बना रखा है। उसी दीननाथ के द्वार की शरण ली है कि हमारी दीनता दुर्बलता को हरो। नीच कर्म दुर्बल बनाते हैं। नीच वासनाएं दीन बनाती हैं। इनका मूल–कारण अहंकार है। इसको (अहंकार को) प्रभु–चरणों में अर्पण किये बिना, नम्र हुए बिना प्रभु हमारे अपवित्र हृदय को स्पर्श नहीं करता। जैसे हम अपवित्र वस्तु वा अपवित्र मैले स्थान को नहीं छूते। अहंकाररहित प्रार्थना और अहंकार की निवृत्ति के लिए प्रार्थना दिल को विनम्र आर्द्र कर देती है और वहां प्रभु ही सब से पूर्व स्पर्श करते हैं। यह है अन्तःकरण की शुद्धि का पहला साधन।

४०. जोत जगा मेरी प्रभु जी

हे ज्योतिस्वरूप प्रकाशस्वरूप देव ! आज तो दीपमाला है, घर–घर, अन्दर और बाहर, गली–कूचों में बाजारों में, दीवारों के ऊपर रोशनी की जगमग–जगमग है। आज की अन्धेरी काली रात में लोगों ने क्या ही प्रकाश का समय बना दिया है। बिजली फानूस जल रहे हैं। लोग आज प्रसन्नता से गीत गा रहे हैं। मिठाइयां, भिन्न–भिन्न प्रकार की जलेबियां, पकौड़े और पकवान तरह–तरह के बांट रहे हैं। दूध, अमृत, मीठा, केसर मिला पी और पिला

रहे हैं। अपनी–अपनी शक्तिभर धन को सजा संवारं, गुलाब और गेंदे के फूल, केसरी दूध में रमा कर धूप, दीप जगाकर लक्ष्मी का पूजन कर रहे हैं।

एक मैं हूं जो एकान्त जंगल की कुटिया में सोलह दिनों से तेरे द्वार पर बैठा हूं। लोग तृप्त हैं, मैं भूखा हूं। वे पूजन कर रहे हैं और मैं तुझे बुला रहा हूं। मेरे भी प्रेमियों ने कुटिया के चारों ओर दीपक जलाकर उजाला कर दिया है, परन्तु नाथ ! वह दीपक मिट्टी के हैं, तेल के पराधीन हैं। घण्टों जलकर बुझ जाएंगे। यदि तेरा पंखा चला तो एक क्षण में अपनी जीवनी समाप्त कर देखेंगे। कुटिया के अन्दर उनको आना नहीं कि मैं तेरी प्रतीक्षा में हूं। मेरे शरीर रूपी कुटिया का मन–रूपी दीप बिना प्रकाश के है। मैं ही जगाऊं मेरा तो हाथ अन्दर नहीं जाता। इसे तो तू ही जगा। तेरा जगाया दीपक अबुझ हो जाता है उसे हवा नहीं बुझा सकती। प्रभो ! तू तो सर्वज्ञ, वेदज्ञ है, वेदनिर्माता है, अतिथि को भूखा रखना, द्वार पर पड़े शरणागत को तिरस्कृत करना बड़ा पाप है। मैं तेरे द्वार का अतिथि हूं, मेरी सुधि नहीं लेता। प्रभो ! या तो मेरा अतिथि सत्कार कर या तू मेरा अतिथि बन जा। यदि तू अतिथि है तो आ कृपा करके दर्शन दे और मेरा बहुत ही परम मूल्यवान् आसन जिस पर मेरी

सारी जीवनी का आधार है उसे ग्रहण कर, अपने नीचे बिछा। यह आसन मेरा अहंकार नाम का आसन है। प्रसिद्ध आसन है। मैं सदा इसी पर चढ़ा रहता हूं। इसे स्वीकार कर ले। मैं घास की कुटिया का द्वार खोल देता हूं। आजा, अब तुझे बाहर कोई नहीं देखेगा। भगवन् ! मेरी दीपमाला खाली चली जाए तो मैं किसका पूजन करूं। मेरी तो लक्ष्मी भी तू है नारायण भी तू है विष्णु भी तू है। मेरी ज्योति जगा मैं उससे तेरी आरती उतारूं। मुझे शपथ खिलाने की बड़ी आदत है। तुझे रब्ब की शपथ है। ओहो तेरा कोई रब्ब 'परमात्मा' नहीं। तू आप ही रब्ब–उल– आलमीन (सबका परमात्मा) है। फिर किसकी शपथ डालूं ? अपने अमृत–पुत्रों का वास्ता मान, अपने प्यारे भक्तों का नाम मान, अपने नाम की लाज रख। शरणागत को अपने द्वार से खाली न लौटा। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि तू मुझे अपने द्वार से यदि खाली न लौटाये और मेरी ज्योति को जगा दे तो मैं तेरी प्रजा–तेरे बन्दों को अपने आए द्वार से खाली न लौटाऊंगा। उनकी ज्योति को तेरी ज्योति से जगाता रहूंगा। मैं और कुछ नहीं मांगता, केवलमात्र दर्शन दे। तुझे यह भय न रहे कि सबकी ज्योति जग गई तो सबका पालन पोषण मुझे करना पड़ेगा। अब तो सारे अपनी कमाई खाते हैं। मेरा

कुछ नहीं लगता। प्रभो ! मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूं कि हम कुछ नहीं मांगेंगे। मैं और मेरे साथी, तेरी ओर आनेवाले, कुछ नहीं मांगेंगे। निःसंकल्प होंगे, खातिरजमा रख धीरज रख। हां, लेन देन का कोई व्यापार आज से नहीं करेंगे तू हमें प्यार किया कर, हम तेरे दर्शन किया करें। फिर मेरी मांग बिल्कुल मिट जाएगी। एक बार अब मेरी ज्योति जगा दे, अपनी ज्योति से मिला दे। ऐसा तृप्त कर दे कि कण–कण में तू दिखाई देता रहे। बस मेरी भूख मिट जाएगी, मेरी प्यार बुझ जाएगी। यही मेरे लिए केसरी, मीठे दूध का अमृत है। मेरी यही मिठाई जलेबी, पकौड़ा, पकवान, अमृतधाम है। हे प्रभु आश्रित के प्रभो ! दया कर, हे दयामय देव ! आओ इस भक्त की सूनी कुटिया को जगमगाओ।

यह मन्दिर विश्वकर्मा का निराला ही निराला है।
तेरी ज्योति का इसमें फकत हो सकता उजाला है।।

४१. क्षमा करना सीखो

हे प्रभो ! मैं अल्पज्ञ मनुष्य हूं, पग–पग पर भूल जाता हूं, भूल करता हूं। अपने जीवन की ओर जब देखता हूं, तो तेरे दरबार में रो–रोकर बारम्बार क्षमा याचना करता हूं। मनुष्य तो कोई पूरा नहीं, भूल हो ही जाती है। मुझे ऐसी शक्ति और साहस दे कि मैं स्वयं

क्षमा करने का अभीष्ट बनूं। उस सेनापति की तरह लज्जित न होना पड़े, जिससे एक बार पूछा गया कि तुम कभी—कभी क्षमा करते हो या नहीं तो उसने कहा—कि मैंने कभी किसी को क्षमा नहीं किया। इस पर प्रश्नकर्त्ता ने कहा तब मैं आशा करता हूं—कि तुम से कभी भूल नहीं होती होगी। इस पर सेनापति लज्जित होगया।

४२. आशीर्वाद की प्रार्थना

ओं मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते।
मेधां ते अश्विनौ देवावधत्तां पुष्करस्रजौ।।

हे बालक ! ईश्वर करे कि दिन और रात तुझे तेरे सुने तथा पढ़े हुए ज्ञान को धारण करने की शक्ति प्रदान करनेवाले हों। पूजनीय परमेश्वर तुझे धारणावती बुद्धि प्रदान करें और आकाश मालाधारी सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश भी तुझे धारणावती बुद्धि देवें, अर्थात् तू काल और सूर्य चन्द्र आदि की समस्त गुप्त शक्तियों का ज्ञात बने।

४३. जन्मदिवस पर कृतज्ञता व प्रार्थना

हे दयानिधे प्रभो ! आज दो फाल्गुन सम्वत् २०१७ है—मेरे ७४ साल आयु के कल तक पूरे होगये—आज ७५ (पचहत्तरवां) साल आरम्भ हो गया—नाथ ! तूने अपनी अपार दया और कृपा से मेरे जीवन की ७४ साल तक कैसे रक्षा की—मेरे जीवन की मुश्किलात को नामुमकिन

को मुमकिन सा कर दिया, कदम–कदम पर जिंदगी का हाल नामुमकिन सा नज़र आता–सबको, मगर वाह रे प्रभु देव ! तूने कैसे क्षण में मुमकिन कर दिया। ऐसा निभाया कि मैं सिवाय इन शब्दों के कि तेरी रहमत का कोई अन्त नहीं है तेरी लीला बेअन्त है–और कुछ नहीं कर सकता। बुद्धि असमर्थ, वाणी असमर्थ है, हे नाथ ! अब भी तुझे ही लाज यह साल अपनी रहमत बेअन्त के साये तले निभाना।

४४. राष्ट्र कल्याण की प्रार्थना

ओं आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णुः रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।। यजु० २२/२२

हे समस्त क्लेशों के नष्ट करनेवाले, बिगड़ी को सुधारनेवाले, पाप अपहारक तथा संकटों से मुक्त करने वाले प्रभो ! इस समय हमारा देश तथा मानव जगत कुकर्मों के कारण पददलित हो चुका है। तुम्हारे बिना अब हमारा कोई उत्थान और कल्याण करनेवाला नहीं। आओ, कृपानिधे आओ ! हमारी इस तुच्छ प्रार्थना को

स्वीकार करो। हमारे देश में ब्राह्मण वेदविद्या में निपुण तथा ब्रह्मवर्चसी उत्पन्न हों तथा राजा प्रजा के लिए महा शूरवीर धनुर्विद्याविशारद राजपूत क्षत्री बलवान् और महारथी पैदा हों। दूध अमृत के स्रोत भर देनेवाली गौएं, हृष्ट पुष्ट बैल, तेज गतिवाले घोड़े, सत्यव्यवहार करने वाली स्त्रियां, रथ पर स्थित होनेवाले तथा शत्रु पर विजय प्राप्त पानेवाले सभा के योग्य सुसभ्य युवा पुरुष उत्पन्न हों। इस राजा के राज्य में विद्वानों का सत्कार करनेवाले सुखों के देनेवाले विशेष ज्ञानवान् तथा शत्रुओं को नष्ट–भ्रष्ट करनेवाले प्राणी उत्पन्न हों, जब–जब हम चाहें वर्षा और मीठे फल से युक्त औषधियां हमें प्राप्त हों तथा हमारी सम्पूर्ण कामनाएं परिपूर्ण हों।

४५. कबीर का भजन

भक्त कबीर के शब्दों में–

मन मेरो लागो यार फकीरी में,
मन मेरो लागो यार फकीरी में।
जो सुख पाया, फकीरी में,
वह सुख नांहि अमीरी में......मन......मेरी......
भला बुरा सबका सुन लीजै,
कर गुजरान गरीबी में......मन मेरी.....
प्रेम नगर में रहन हमारी,

भली बन आयी सबूरी में....मन....मेरो....
हाथ में कुण्डी बगल में सोटा,
चारों दिशा जागीरी में....मन......मेरी......
आखिर यह तन खाक मिलेगा,
काहे फिरत मगरूरी में.....मन.....मेरो.....
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
साहब मिले सबूरी में.......मन मेरो........१६—८—७१

४६. रोने में आनन्द आता है

व्रत, एकम् भादों सं—२०१८ तपोवन देहरादून वाह प्रभो ! धन्य हो लोगों को तो हंसने में आनन्द आता है, मुझे तो तेरे सामने रोने में भी आनन्द आता है। यह आनन्द तेरा अपना निज स्वरूप है। तू मुझे रोने में इसके दर्शन कराता है।

द्वितीय भाग

सौम्य सन्त के लिखित उपदेश एवं पत्र

१. गृहस्थियों का यज्ञ अनुष्ठान

पत्र आपका दस्ती मिला। धन्यवाद। वृत्तान्त ज्ञात हुआ। मेरा आशीर्वाद सदा आपके साथ है। ऐसे पवित्र कार्य और भावना के लिए तो देवता भी स्वयं आशीर्वाद देते रहते हैं। चारों वेदों का जो संकल्प है वह जरूर पूरा होना चाहिए। अथर्ववेद को सम्पूर्ण करके ऋग्वेद भी जरूर करें, चाहे थोड़ा–थोड़ा होता रहे, इन १०० के साथ–साथ या पहले वह दो जल्दी पूरे कर लेवें फिर १०० का शुरू करें।

१५ दिन वाले समाप्ति पर अड़चन आ जावे तो दिन छोड़ देवें। फिर शुरू करें। बेशक चार साल वह न निभा सकेंगे उसका हल यह है। पहले ही विचार बना लेवें कि इतने यज्ञ करने के बाद १५ या एक सप्ताह गृहस्थ के लिए रहेगा। गृहस्थ के ३ दिन बाद फिर शुरू कर देंगे। इससे फिर बाधा न पड़ेगी।

अखण्ड अग्नि के लिए उपरोक्त नियम काफी है। गृहस्थी विवश होता है। हां यदि शुरू से आखिर तक ब्रह्मचर्य हो, और द्वेष क्रोध असत्य भी न रहें, तो अन्तःकरण

की शुद्धि और मनोरथ सिद्धि में जरा भी शंका नहीं रह

सकती।

एक घी एक सामग्री की आहुति, दोनों सामग्री देवें तो कंगालों का यज्ञ गिर जावेगा। फल भी उसी के अनुसार मिलेगा।

कोई गैरहाजिर हो लाचारी से, तो एक दोनों की आहुति दे सकता है।

प्रभु देव आपको सफलता देवेंगे।

२. यज्ञ का रूप

माताओ आपका बड़ा सौभाग्य है कि आप यज्ञ कर रही हो। भगवान् ने यज्ञ को तीन भागों में बांटा–देव पूजा, संगतिकरण और दान। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि सकल ब्रह्माण्ड को परमेश्वर ने यज्ञ द्वारा उत्पन्न किया। यज्ञ कामधुक् है। सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करता है।

संगतिकरण यज्ञ की नाभि है। संगतिकरण उन्नति कराएगा त्याग भाव से। दान से स्थिति होगी, देवपूजा से रक्षा होगी जो बाड़ का काम देगी। कोई हमला नहीं कर सकेगा, किला बन जाएगा। यज्ञ, तप, दान मनुष्य को पवित्र करनेवाले हैं। देव–पूजा नहीं होगी तो बाड़ नहीं होगी, बिना बाड़ की खेती को पशु चर जाते हैं।

यदि सिर न हो तो धड़ किसी काम का नहीं। बिना

सिर के धड़ की पहचान नहीं हो सकती कि किस का है। ऐसे संगतिकरण धड़, देवपूजा सिर है, दान उसके पांव हैं जिस पर वह कायम रहेगा। हम यज्ञ द्वारा उसके साथ हाथ मिला रहे हैं।

यज्ञ का देवता इन्द्र है। एक गरीब लड़की का हाथ किसी बड़े सेठ लखपति ने पकड़ लिया अर्थात् विवाह कर लिया, उस लड़की का सबकुछ बदल गया। पहले वह लड़की रूखा–सूखा खाती, बोझा ढ़ोती थी, अब वह रानी बन गई। सब जिम्मेवारी पति पर आगई। घर का सौदा, सामान लाना इत्यादि सब फिक्र पति को है; यह पटरानी बनी बैठी है। यह है हाथ पकड़वाने का प्रताप। इसी तरह जो यज्ञ करता है उस का सम्बन्ध इन्द्र से जुड़ जाता है, उसकी कायाकल्प हो जाती है। यदि हम भी इन्द्र के साथ सम्पर्क बनावेंगे, हम उस राजा की रानी के सदृश्य हो जाएंगे।

"इन्द्रो विश्वस्य राजति"

यज्ञ करनेवालों को प्रत्येक देवता अपनी–अपनी भेंट दे रहा है। पृथ्वी, सोना, चांदी, हीरे, पशु, दूध इत्यादि अनखुट खजाना मिलेगा। कई लोग कहते हैं कि यज्ञ में घी पदार्थ जाया कर रहे हैं, पर उनके मन पर पर्दा पड़ा हुआ है उन्हें समझा नहीं सकते।

दुर्योधन को भगवान् कृष्ण नहीं समझा सके। वे ऐसे होते हैं जैसे दाल में कुरड़ दाने होते हैं, कितनी ही आग दें वे नहीं गलते। ऐसे मनुष्य लाइलाज हैं। उनकी बातों पर ध्यान न दें, श्रद्धा–भक्ति से यज्ञ में आहुति दें, देवताओं को प्रसन्न करें, देवता आपको सम्पूर्ण सुख देंगे, इसीलिए यज्ञ–प्रेमियो यथाशक्ति यज्ञ करो। अपनी जीवन यात्रा को सफल करो। प्रभुदेव ऐसा करने की प्रेरणा और साहस दें।

३. प्रभु सब में समाया है

आदरणीय यज्ञ व धर्म–प्रेमियो !

आज माघ मास की संक्रान्ति है। यह मास सुन्दर हितकारी ध्यानियों के लिए और दानियों के लिए भी है। भाग्यशाली यज्ञ रचाते और तप दान से शोभा पाते हैं। परमात्मा इनका जीवन सफ़ल करे।

यज्ञ पहले प्रवृत्ति और बाद में निवृत्ति की शिक्षा देता है। मनुष्य का लक्ष्य निवृत्ति है। यदि मोह प्रवृत्ति में रह गया, यज्ञ भी बंधन बन जाता है, जितना मनुष्य मोह बढ़ाता है उतनी जिम्मेदारी मोल लेता है। जितनी जिम्मेदारी उठाता है उतना बन्धन में जकड़ जाता है, चाहे वह मोह धन का हो, मान का हो, जन का हो। धन का मोह अन्याय करांयेगा, जन का मोह कंजूस बनाएगा, मान का मोह बेआराम करेगा।

मनुष्य की आत्मा का भोजन यश है। यश के साधन चार हैं—अन्न, धन, बल, ज्ञान।

अन्न धन अर्पण करने से संसार के लोग यश करेंगे। यह बाहर की चीज है। बल और ज्ञान अन्दर की चीजें हैं। दोनों प्रभु अर्पण हो जाएं तो प्रभुदेव यश करेंगे। जब प्रभु जैसे महान् ऐश्वर्यवान् शक्तिशाली यश करेंगे तो संसार के लोगों का यश हेय (तुच्छ) प्रतीत होगा। तब अभिमान हरगिज नहीं आता।

यदि बल और ज्ञान तो अर्पण न हो और अन्न, धन अर्पण हो तो उससे अवश्य अभिमान उपजेगा, जो कि गिरा देगा।

सबसे कीमती और रक्षा के योग्य वह वस्तु है जो जाकर फिर वापस न आए। संसार के सब पदार्थ जाकर वापिस आ जाते हैं, परन्तु एक **समय या काल** ही ऐसा है जो जाकर वापस नहीं लौटता। इस समय की कद्र और रक्षा करनेवाला मनुष्य ही सफल और सिद्ध जीवनवाला बनता है।

प्रभु सबको प्राप्त हैं भिन्न–भिन्न रूप में यदि उस रूप की समझ आजाए कि प्रभु मुझ में किस रूप में आए हुए हैं, तो मनुष्य आत्मा की भान्ति सदा जागता रहे। प्रभु मुक्तजीवों को तो दर्शन रूप में प्राप्त हैं और सिद्ध जीवों को अपने दिव्य गुणों से।

कोई न कोई दिव्य गुण, दिव्य शक्ति या दिव्य शक्ति के साधन प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होते हैं, परन्तु साधारण मनुष्य उससे बेखबर रहता है। इसलिए अपने उस गुण की रक्षा नहीं कर सकता। प्रभु करे आप सबको अपने दिव्य गुण, दिव्य शक्ति की समझ आजाए—ओ३म् शम्।

४. याजकों को आहार व्यवहार सुधारना अनिवार्य

प्यारे आदरणीय महानुभावो ! मनुष्य अपने जीवन यापन में अनेक कार्य करता है और कई–कई मनुष्य सज्जन किसी एक विशेष कार्य को भी नियमबद्ध होकर प्रतिदिन, पाक्षिक—मासिक या वार्षिक भी करते हैं। जैसे कोई व्यावहारिक फर्मोंवाले वर्ष में किसी एक तिथि पर अपनी बहियों का मुहूर्त करते हैं।

कई पाक्षिक पूर्णमासी यज्ञ नियम से करते हैं। कई वार्षिक यज्ञ एक वेद का करते हैं। अपने नियत समय पर संस्थाएं भी वार्षिक उत्सव मनाती हैं। बड़े समारोह से जनता को, वेद उपदेशकों को और भजनीकों को बुलाती हैं।

व्यावहारिक सम्बन्धी वार्षिक समारोह तो Advertisement इश्तहारबाजी हैं। उतने खर्च और कष्ट करने का कोई मतलब नहीं होता।

धार्मिक संस्थाओं का मतलब भी अपनी कारगुजारी को मशहूर करना और लोगों का विश्वासपात्र बनने के लिए होता है।

घरों में अपने कार्य व्यवहार को छोड़कर एकचित्त से श्रद्धा भक्ति भाव से वार्षिक यज्ञ या यज्ञविशेष किये जाते हैं उनका तात्पर्य केवल आत्म–सुधार एवं आत्मोन्नति ही होता है।

यम नियम का पूर्ण रूप से पालन करते रहें। वे चन्द दिन प्रभु अर्पण रहना होता है। प्रभु की समीपता से अपने दोषों, कमियों, त्रुटियों की ओर हर वक्त दृष्टि जाती रहती है। जैसे अग्नि की समीपता से मनुष्य को गर्मी या ताप लगता है, अन्दर का पसीना, मैल निकलता है ऐसे ही ब्रह्म अग्नि की समीपता से हृदय में सन्ताप पैदा होता है। पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त द्वारा वे मल दोष खारिज होते हैं। याजक साधक उज्ज्वल और शुद्ध शान्त हो जाता है। ऐसी शुद्धियों से साधक, याजक में आगे के लिए सावधान रहने का बल पैदा हो जाता है।

यह एक प्रकार का अपने आत्म–जीवन, शरीर 'हविर्धान' को शुद्ध करना होता है क्योंकि जिस प्रकार की आहुति इस शरीर को मिलेगी वैसे ही यह प्रकट होगा। यों समझिये मनुष्य जो खाता–पीता है वही उसका

सत्त्व है, वैसा उसका मन बनता है, मनुष्य जैसा प्राण लेता है, जैसे पवन का सेवन करता है वैसे ही उसका चित्त बनता है। जैसा देखता–सुनता है वैसा ही उसका चिन्तन होता है। वैसे ही उसके विचार बनते हैं। जिसके जैसे विचार होते हैं वैसे ही उसके कर्म होते हैं। यदि उपासक, याजक मनुष्य अपने हविर्धान पर, शरीर में–आंख, नाक, कान द्वारा तामसी हवि की आहुतियां देगा तो अन्तःकरण तामसी हो जावेगा और तामसी ही सबकुछ अनुभव करेगा, कर्म भी तामसी करेगा, निकृष्ट कर्म करेगा। ऐसे ही राजसी सात्त्विक हविर्धान मैं वैसी ही स्थिति होगी। यदि दिव्य आहुतियां देगा तो उत्तम अवस्थिति से युक्त होकर सहज स्वभाव से सदा श्रेष्ठतम कर्म ही करेगा।

समझ ले ! जैसा जीवन वैसा जीव, जैसा जीव वैसा कर्म। अन्तःकरण के सब विकारों और वासनाओं को अन्तर्व्यापी–अन्तर्यामी विष्णु भगवान् पूर्णतः जानते हैं। उपासक याजक को अन्तःकरण द्वारा पवित्रता की ओर अग्रसर करते हैं।

५. याजक आहुति स्वयं दें

परमेश्वर सर्वव्यापक है यह शब्दों से जानी हुई बात है, अर्थ से न किसी ने जाना है और आचरण से न किसी

ने माना है। परमेश्वर को सर्वत्र वही देख सकता है जो स्वयं सर्वत्र व्यापक होगया हो।

प्रश्न—जीव सर्वत्र कैसे व्यापक हो सकता है ?

उत्तर—अपने कर्म से; यज्ञ कर्म, याजक के आकार और भावों को प्रत्येक वस्तु व्यक्ति में प्रविष्ट करा देता है। जब याजक सर्वत्र कर्म के रूप में व्याप्त हो जाता है और परमेश्वर का आश्रित बनने पर श्रेष्ठतम कर्म (यज्ञ) करने के योग्य हो जाता है। **यजु० ६-१०**

कर्म ऐसी चीज है जो कर्मकर्त्ता को प्रकट करता है उदाहरणतः रात को हम रेडियो सुनते हैं तो अमरीका, इंग्लैण्ड की आवाज ज्यों की त्यों उसी हावभाव से जैसे बोलनेवाला बोल रहा हो, टेलीविजन से आकार भी सामने आजाता है, सुनाई भी देता है। प्रतीत हो रहा होता है कि अमुक व्यक्ति बोल रहा है।

कोई आदमी वृक्ष कुल्हाड़ी से काट रहा हो, आवाज़ आती है तो हम कहते हैं कि कोई आदमी कुल्हाड़ी से काट रहा है। यदि वह आरे से चीर रहा है तो आवाज़ से आरे का भान होता है। यहां तक कि रेलवे वाले इंजन की आवाज़ को सुनकर कह देते हैं कि अमुक गाड़ी आ रही है। मोटर वाले हार्न की ध्वनि को सुनकर कह देते हैं कि अमुक की मोटर आई है।

वाणी, कर्म इन्द्रिय है, बोलना कर्म है। इसलिए जो कोई स्वाहा बोलता है तो उसका आकार और अन्दर के भाव उस आवाज के साथ फैल जाते हैं और सर्वत्र जाते हैं।

एक मित्र दूसरे मित्र को लिफाफा भेजता है उस पर पता लिखा, पर भेजने वाले का नाम न लिखा। परन्तु पाने वाला पत्र हाथ में ले खोलने से पूर्व कह देता है कि अमुक मित्र का पत्र है। उसका आकार प्रेम भरा सामने आ जाता है। ठीक इसी तरह से दी हुई आहुति जब अग्नि में पड़ती है तो वह सर्वत्र याजक के आकार भाव को साथ ले जाती है, और जो प्राणी श्वास लेता है या जिस वस्तु में वह प्रवेश करती है आहुति देनेवाले के आकार और भाव को भी साथ प्रवेश कराती है।

यजुर्वेद का दूसरा अध्याय इसका साक्षी है विशेषतः मन्त्र २३–२६–२८–२९। यज्ञ का स्वरूप त्याग है जैसे वेद मन्त्र ने कहा–

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः"

स्वाहा कहते ही अपने हाथ में बन्द रखे द्रव्य को अग्नि में त्याग देता है और इससे पहले वायु शुद्ध होती है ब्रह्माण्ड में वायु द्वारा ही सब कार्य होते हैं। सूर्य का प्रकाश हम तक वायु द्वारा पहुंचता है। आकाश का शब्द

भी हम तक वायु द्वारा पहुंचता है। पृथ्वी की गंध भी हम को वायु द्वारा प्राप्त होती है। सर्दी–गर्मी का भान भी वायु द्वारा स्पर्श करता है। निष्कर्ष कि इस ब्रह्माण्ड में वायु ही सब विषयों का वाहक है।

ऐसे ही पिण्ड में प्राण है जिसके द्वारा इन्द्रियां विषयों को ग्रहण करती हैं। इस वायु के शुद्ध करने से सब संसार के प्राणियों का भला होता है जिसका एक मात्र साधन यज्ञ हवन ही है।

६. यज्ञ आरम्भ उपदेश

पूज्य माताओ ! आज का वार बड़ा प्यारा और सुहावना सोमवार है। भगवान् सोम हैं और उन्हें ही मिलते हैं जो सौम्य–मूर्ति होते हैं। सोम बनानेवाला भक्ति यज्ञ या भक्ति योग है। भक्ति का वेद सामवेद है जिसके द्वारा आप देवियां यज्ञ कर ही हैं। साम का अर्थ समझो 'सा' का अर्थ साथ, 'म' का अर्थ मिलाप, मेल हो नितांत; याजक भक्त जीव का भगवान् से मिलाप।

यज्ञ और भक्ति का रूप है प्रेम। यज्ञ करनेवाला प्रार्थना करता है प्रतिदिन। मैं तो जब तक यज्ञ करता रहा, यही प्रार्थना करता था। "हम में दाता बढ़ें, वेद–ज्ञान बढ़े, वेद प्रचार बढ़े, सन्तान बढ़े, श्रद्धालु हम से कभी दूर न हों और देने को हमारे पास बहुत कुछ हो। हमारे घरों

में बहुत अन्न हो और हम अतिथियों को ढूंढते फिरें–हमारे पास यचना करनेवाले आवें–कोई सवाली खाली न जावे, मगर हम किसी से याचना न करें।"

आज की बात जो मैं कहूंगा वह जीवन में मिलाप प्रेम, मुहब्बत, संगठन की कहता हूं। जो हमें सोम बना दे। बुद्धिमान्, अच्छा, नेक, सम्पन्न मनुष्य चाहता है कि मेरे द्वार पर लोग आयें और मैं उनका यथाशक्ति, यथायोग्य, सेवा और सत्कार करूं। यह बहुत ऊंची धारणा है। और यह भी चाहता है कि मैं किसी के द्वार पर न जाऊं। यह भाव इसलिए भी ऊंचा कहा जा सकता है कि वह किसी के आगे हाथ न फैलाएं, परन्तु मैं किसी के द्वार पर न जाऊं यह भाव याजक के लिए निष्कृष्ट है। किसी का भार न उठाऊं, किसी का न खाऊं न पीऊं। याद रखिए ! ऐसे धर्मात्मा, नेक स्वभाव होते हुए भी दूसरे का मूल्य, दूसरे के प्रेम का मूल्य, आदर का मूल्य नहीं जानते। उसे तिरस्कृत कर देने पर जहां उनकी आत्मा को ठेस लगती है वहां प्रेम जो परमेश्वर का स्वरूप और गुण है जो वास्तविक यज्ञ 'संगतिकरण' यज्ञ की नाभि है वह भगवान् और यज्ञ और उत्तम गुण का तिरस्कार करते हैं। साथ ही किसी वस्तु के न लेने के भाव बना लेते हैं तो असत्य बोल देते हैं। 'हमारी तबियत खराब है, मेदा खराब है,

भूख नहीं है या खाकर आया हूं।' इससे भले उन को प्रेम आदर करनेवाला कुछ न कह सके; याद रखो ! उनका अन्दर और बाहर एक न होने से उनके संस्कार भावी जन्म के लिए बहुत हानिकारक हो जाते हैं। गुप्त रूप में उनमें अहंकार, घृणा, अगले जन्म में जरूर प्रकट होगी। शुभ कर्म करेंगे तो भी उनकी निन्दा होगी, यश कोई न करेगा। जो यहां प्रेम का तिरस्कार करता है उसे अगले जन्म में प्रेम नहीं मिलेगा। कई बार देखा गया है, स्त्री अपने पति पर न्यौछावर रहती है, अज़हद (अति) सेवा करती है। परन्तु पति सदा उसका तिरस्कार करता है। उसका कारण भी उपरोक्त है। जो अपने सगे–सम्बन्धियों मित्रों, हितैषी, ताल्लुकदारों के घरों में इसलिए नहीं जाते कि हम उनके आभारी न बनें, या जब जाते हैं तो उनको ठेस लगाकर वापस आते हैं उनके प्रेम को स्वीकार नहीं करते।

प्यारे याजको ! खान–पान, आना–जाना, पत्र–व्यवहार, प्रेम व संगठन को बढ़ाता है, जहां खान–पान और आने–जाने को भार मान लिया जाता है वहां प्रेम परमात्मा का यज्ञ रूपी गुण भाग जाता है।

दीन गरीब को देना, यह है त्याग, करुणा उससे लेने की कोई भावना नहीं, यह भी प्रभु देव के यज्ञ का

गुण है दान रूप में। साधु, सन्त, महात्मा, विद्वान् को देना, सेवा करनी उनसे भी लेने की भावना नहीं, यह भी गुण है प्रभु के यज्ञ का—देव पूजा। इनसे गुप्त फल अपने आप मिलते हैं। तीसरा है बराबर वालों का देन—लेन, यह है प्रेम संगतिकरण—यज्ञ प्रभु का गुण—जो अपने को किसी भी कारण से ऊंचा मान लेता है, वह 'समत्व' बुद्धि का नाश करता है वह यज्ञ योग बुद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता।

आप आज यज्ञ को आरम्भ कर रहे हैं। अपने अन्दर पड़ताल करो यदि किसी में ऐसी वृत्ति है तो उसे वह बदल दे। राम के भक्ति और यज्ञ के सोम रूप को समझ अपने अन्दर धारण करे।

भगवान् यज्ञ और याजकों की रक्षा करें।

७. याजकों के प्रतीक

प्यारे यज्ञप्रेमियो ! मनुष्य क्या चाहता है ? चाहता तो बहुत कुछ है पर करता बहुत कम है। (१) ऐश्वर्य चाहता है, (२) शान्ति भी चाहता है। (३) लीडर, नेता, बड़ा बनना चाहता है। कैसे यह चाह पूरी हो ? लो सुनो—

हे मनुष्य ! यदि ऐश्वर्य में उन्नत होना चाहता है तो अग्नि के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर।

यदि परम शान्ति को प्राप्त करना चाहता है तो जल के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर।

यदि संसार में नेता और सबका आसरा बनना चाहता है तो पृथ्वी के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर।

इन्हीं देवताओं को अपना लक्ष्य बनाकर अपना उद्देश्य सिद्ध कर।

१. अग्नि का रंग सोने का है। सोना सब धनाढ्यों की सम्पत्ति का द्योतक है। अग्नि का गुण तो रूप है। स्वभाव ऊपर को जाना है। ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला दृढ़संकल्प अपने धर्म इरादे को न छोड़े। कर्म उसका है दाह करना (जलाना)। अपने अन्दर के खोट को जला दे। अपने स्वार्थ के लिए किसी के साथ खोट न करे।

इसका नाम तब तक प्रकाशित होगा जब वह अग्नि की तरह सब हकदारों (मुस्तहकों) को बांट दे, कंजूस न होगा। उदारचित्त से किसी का हक अपने पास न रखने वाला होगा।

२. शान्ति को प्राप्त करनेवाला जल के गुण वाणी में रस स्वभाव में नम्रता–अहंकार रहित कर्म में स्वार्थ रहित दूसरों का उपकार करना, जल में दो बड़ी विशेषताएं ये हैं–

i) पानी में लकीर नहीं पड़ती, कोई उस पर सोटी मारता रहे ऐसे शान्ति चाहनेवाले के हृदय में, स्मृति में, दूसरों की की हुई दुश्मनी बुराई कभी न आए—वरना द्वेषवृत्ति पैदा हो जावेगी।

ii) दूसरी विशेषता यह है कि जब उसके सामने गढ्डा आ जाये जल आगे नहीं बढ़ता जब तक उसे भरकर सम न कर ले। ऐसे शान्ति के इच्छुक को अपने में से द्वेष, ऐब को दूर करके ही आगे कदम रखना होगा। निर्दोष निर्द्वेष होकर चले, बढ़े और उपकार करता जाए।

३. नेता; संसार के प्राणियों का बड़ा आसरा बनने के लिए पृथ्वी के गुण, कर्म और स्वभाव को धारण करना ही पड़ेगा। पर विशेषता सबसे बड़ी यह होगी कि सहनशील बने। माता जैसे अपने बच्चों की सब सहन करती है। उनके दोषों को ढ़ांपती है, पालन पोषण करती और सहारा बनी रहती है। मुखालिफ होने पर भी सबका आश्रय बनी रहती है। ऐसे नेता का काम हो, प्रभु का पूजक और याजक भी इन देवताओं को अपने अन्दर धारण करने योग्य बनाते हैं। प्रभुदेव हमें अपना सच्चा पूजक और याजक बना दे ताकि हम जीवन सफल बना सकें।

८. यज्ञ की आत्मा व प्राण

आदरणीय धर्मप्रेमियो ! अच्छे और दूसरों की भलाई

के सब काम यज्ञ कहलाते हैं और यश कमाते हैं; कोई भी करे। आपके इस होम, यज्ञ और उनमें अन्तर यह है कि वे सब काम भलाई के एक तो एकदेशी होते हैं दूसरा उनमें भगवान् का नाम नहीं होता, आपका यज्ञ सर्वदेशी है और उसमें मुख्य भगवान् मध्य भगवान् और अन्त भी भगवान् है। यह यज्ञ कार्य उस ओ३म् प्रभु से ओतप्रोत है। इसलिए समझो कि आप यज्ञ करनेवाले उस प्रभु से घिरे हुए हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् जिसकी बाड़ बन जाए उनको फिर खतरा ही क्या ?

एक धार्मिक मनुष्य जप, तप, भजन, ध्यान, यज्ञ और दान आदि किसलिए करता है ? अपने अन्तःकरण रूपी दर्पण को शुद्ध एवं पवित्र करने के लिए। अन्तःकरण मैला क्यों हो जाता है ? उसके तीन कारण हैं—१. अहंकार, २. स्वार्थ, ३. आसक्ति। और यही तीनों ईर्ष्या, द्वेष, घृणा को उत्पन्न करते हैं। मलिन और कंजूस अन्तःकरण में, हृदय में अपना सगा भाई, बहिन, माता, पिता भी नहीं समा सकते। जब अन्तःकरण हृदय शुद्ध, पवित्र, निर्मल, उदार हो जाए तो उसी छोटे से हृदय में समस्त संसार के प्राणी और जगत्कर्त्ता परमेश्वर भी समा जाते हैं। देखो इस यज्ञ की आत्मा है **'स्वाहा'** और प्राण हैं **'इदं न मम'**। ये दो ही शब्द हमारे अन्तःकरण को

शुद्ध पवित्र, निर्मल और उदार बना देते हैं यदि उनके अर्थ और भाव, ज्ञान हमारे हृदय में उतर आवें। जैसे दिमाग से उतरा शब्द वाणी पर आया और झट 'स्वाहा' कहने पर हाथों ने सामग्री घृत अग्नि में अर्पण कर दिए। वह प्रकाशित होगई। उस सामग्री की सुगन्ध यज्ञ अग्नि से लौटकर तुरन्त हमारी नासिका द्वारा हमारे दिमाग को सुगन्धित करने लगी। ऐसे **'स्वाहा'-'इदं न मम'**—का भाव यज्ञ अग्नि से प्रकाश को लेकर हमारे हृदय में लौट आवे तो तत्काल हमारा अन्तःकरण प्रकाशित हो जाए।

यज्ञ की पूर्णाहुति पर हम कहते हैं कि जब दर्शक बहुत आ जावें और कुण्ड भर जाए अग्नि की ज्वाला तीव्र और ऊंचाई तक प्रकाश करे और वह दृश्य हम सबको आह्लाद देनेवाला होजावे तो हम कहते हैं कि हमारा यज्ञ सफल हुआ। यज्ञ की असल सफलता दो प्रकार से है—एक तो वह जल वायु को शुद्ध करेगा—संसार के लिए। दूसरा हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाए, **'स्वाहा-इदं न मम'** की भावना अन्दर घर कर लेने से।

आप लोग व्रती बने हैं। यम नियम के पालन करने का व्रत धारण किया है। परमेश्वर आपको अपना आशीर्वाद प्रदान करें, बल सामर्थ्य प्रदान करें ताकि आपका यज्ञ सफल हो।

६. दयादृष्टि कीजिए भगवान्—हमें उदार बनावें

'नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत।' अथर्व० १३/४/४८

ओ मनुष्य ! तुम मुझको प्रेमभाव, उपासना योग विधि से अपनी आत्मा में सदा देखते रहो तथा मेरी आज्ञा और वेदविद्या को यथावत् जान के उसी रीति से आचरण करो। फिर उपासक भी कहे; हे प्रभो ! (पश्य मा) आप कृपादृष्टि से हमको सदा देखिये अतः हम लोग (नमस्ते अस्तु) आपको नमस्कार करते हैं।

अब प्रश्न होता है कि परमेश्वर भक्त का क्या देखे ? या क्या देखता है ? जैसे विद्या पढ़ी जाती है तो उसकी परीक्षा भी होती है। ऐसे उपासक की उपासना की भी परीक्षा होती है।

भगवान् का भक्त बढ़ा, अन्न, धन, सम्पत्ति से उपासक बढ़ा, यश कीर्ति—तेज और ब्रह्मवर्चस से, परीक्षा में रूप—

१. ऐश्वर्य पाकर उपासक उसमें आसक्त होता है—कंजूस बनता है या ऐश्वर्य पाकर ईश्वर का समझकर अपने को खजाञ्ची या ट्रस्टी (trustee) बनाता है। किस काम में लगाता है।

कई बार उसके द्वार पर किसी साधु को वक्त—बेवक्त भेज देता है और यह याचना करता है अब उसे उपासक क्या समझता है ? कैसे व्यवहार करता है ?

पाकिस्तान में कोट मिठन में ख्वाजा गुलाम फरीद **साहिब** बड़े ऊंचे सन्त रहते थे। नवाब, रईस, तुमनदार जैलदार बड़े–बड़े आदमी लाखों उनके मुरीद थे। एक बार एक आदमी दीन बनकर उनके पास आया और कहा! मेरे बच्चे भूखे हैं मैं हजरत रसूल हूं (हजरत मुहम्मद साहब के वंश से सैयद हूं)। ख्वाजा साहिब ने आज्ञा दी इसें इतने........रुपये दे दिये जावें ! जब वह लेकर चला गया तो पास बैठे एक मुरीद ने कहा हजूर यह तो माछी है (मछली मारनेवाला)। ख्वाजा साहिब ने फरमाया कोई हो। हमने तो हजरत रसूल को भेंट की है। वह जाने। अतः उन्हें कोई दुःख, पश्चात्ताप न हुआ। यह थी परीक्षा।

नोट– मैं दो बार अपनी स्मृति के अनुसार फेल हुआ, एक बार जाग्रतावस्था में, एक बार स्वप्न में। स्वप्न में साधु ने रोटी मांगी, प्रातः भजन का समय था तो मैंने उसे धुतकार दिया–एक बार जाग्रतावस्था में बैठा था एक व्यक्ति लम्बे कद का ब्राह्मण या मासिख संत, सिखों का सा भेष था। उसने कम्बल मांगा, मैंने कहा मेरे पास एक ही अपने पहनने का है आपको दूं तो मुझे मांगना पड़ेगा, इससे यही अच्छा है कि आप किसी गृहस्थी से मांग लो। वह बैठा रहा। मैंने कहा भोजन यहां मेरे साथ कर लेवें कम्बल किसी गृहस्थी से मांग लेवें। मैंने कहा

कि मैं अदर स्नान कर लूं। जब सनान से वापस आया तो वह व्यक्ति चला गया था।

१. इन दोनों घटनाओं के लिए मुझे कई बार अफसोस होता है जब–जब याद पड़ती है।

२. यश और कीर्ति के कारण किसी का अपमान तो नहीं करता या भूल तो नहीं जाता। यह भी परीक्षा होती है।

३. तेज प्राप्त करके किसी से भय तो नहीं खाता, किसी के आगे दीन तो नहीं बनता, किसी की खुशामद तो नहीं करता सत्य न्याय के मुकाबले में।

४. ब्रह्मवर्चस प्राप्त करके संसार के विषयों में तो उसे खिंचाव नहीं होता।

ऐसी समय–समय पर आजमाइस (परीक्षा) होती है। स्वप्न में जागृत में, ध्यान समाधि में। अतः प्रभुभक्तों को कुछ सावधान रहना चांहिए। जैसे प्रभु और प्रभु के देवता पृथ्वी, जल, पवन आदि उदार हैं ऐसे भक्त को भी विशालहृदय होना चाहिए। मेरी तरह फेल न हो जाना चाहिए। पीछे पछताना न पड़े।

प्यारी मांताओ ! तुम तो जन्म से देवी पद को प्राप्त हो। संतानों में दिव्य गुण भर दो। प्रभुदेव हमें अपना सच्चा याचक, उपासक बनावें, ओ३म्।

१०. यज्ञ में योग का समावेश एकाग्रता

पूज्य माताओ ! यह पवित्र यज्ञ अथर्ववेद के मंत्रों से हो रहा है। यह वेद ब्रह्म वेद कहलाता है। ज्ञान का वेद है। अथर्व का अर्थ है चंचलतारहित योगचित्त, इसलिए मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को जो एकाग्र कर के आहुति देता है उसके सब कार्य मनोरथ इस यज्ञ से सिद्ध होते हैं।

समेटना और फैलाना, दो कार्य संसार के अन्दर हैं। योग एक बीज समान है और यज्ञ वृक्ष समान। जैसे बीज भूमि में एक ही स्थान पर डाला जाता है। वह बीज नितान्त सूक्ष्म सा है। तब भी वह अपने को स्वतः और सुकेड़कर अणु बन जाता है। फिर इन्द्र की सब देवताओं की शक्तियों को खींचकर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। लकड़ी, तना, शाखा, पत्ते फूल–फल सब विस्तार में यज्ञ के रूप में प्रकट हो जाते हैं।

फल में दो रूप, एक वर्तमान में तृप्त करता है और भविष्य के लिए फिर बीज बन जाता है। ऐसे ही यज्ञ का फल इस लोक में तृप्त करना, सुख देना और परलोक में प्रभु तक पहुंचाना है। बशर्ते कि यज्ञ एकाग्रता से किया जावे। कान और आंख एक बन जावें, वाणी और हाथ एक बन जावें। इन दोनों का मिलाप मन के बिना नहीं

होता और मन इनका तब मिलाप कराता है जब बुद्धि निश्चय कर देती है। बुद्धि तब निश्चय करती है जब ग्राह्य विषय या वस्तु बुद्धि के समक्ष की जाए। ग्राही अहंकार है। अहंकार के फिर दो रूप हैं—१. स्वार्थ, २. अहंकार। स्वार्थ को यज्ञ अर्पण किया जाता है और अहंकार को योग अर्पण किया जाता है। स्वार्थ अर्पण समष्टि के साथ मिलाप कराता है, अहंकार अर्पण प्रभु के साथ संबंध जुड़ाता है। यज्ञ से मनुष्य द्यौ और पृथ्वी पर प्रसिद्धि चाहता है उसका लक्ष्य द्यौ पहले पृथ्वी पीछे। पृथ्वी पर उत्तम मनुष्य के रूप में, और द्यौ पर देवता के रूप में।

यज्ञ करना मनुष्य की सामर्थ्य नहीं। देव बनकर कर सकता है। इसलिए जो यज्ञ करना चाहे वह देव बनकर दिव्य गुण धारण करके करे। देवताओं के गुणों के साथ कर्म और स्वभाव को धारण करे। कारण कि यह पृथ्वी देवयजनी है। देवता ही इस पर यज्ञ करते हैं। प्रभु करे कि हम सब यज्ञ करनेवाले इस रहस्य को समझकर यज्ञ करें तो बेड़ा पार हो।

११. यज्ञ-अध्वर-पवित्रता का रहस्य

प्यारे धर्म व यज्ञ प्रेमियो ! प्रभुदेव ने मनुष्य को क्या ही सुन्दर यह शरीर दिया है जन्म जीवन सफल करने के

लिए। शरीर की सब इन्द्रियां सुराखदार (छिद्रयुक्त) मैल निकालती हैं। ज्ञान इन्द्रियां ग्रहण तो करती हैं परन्तु देती कुछ नहीं। हाथ हवन यज्ञ करता है वैश्य के समान है। वाणी वशीकरण करती है वह ब्राह्मण के समान होती है। यज्ञ हवन में हाथ और वाणी का ही मुख्य काम होता है। हाथ पवित्र करता है शरीर और द्रव्य को; सारे शरीर, इन्द्रियों और अन्य पदार्थों की मैल को हाथ साफ करते हैं। ऐसे हाथ से दी हुई आहुति मानो शरीर और शरीर से कमाए धन को, पकाए अन्न को निरोगी तेजस्वी बनाती है। वाणी बोलती है वेद के पवित्र मंत्र। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। इसलिए समझकर बोलनेवाली वाणी बुद्धि को पवित्र करती है।

प्राण पवित्र करता है मन को, यदि मन एकाग्रचित्त होकर प्राणों की एकाग्रता से आहुति दी जाये तो मन पवित्र हो जाता है, मन पवित्र बनेगा—जितनी चेष्टाएं काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की उठती हैं वे सब प्राण द्वारा ही उठती हैं। इसलिए जो याजक होता है वह प्राणों की चेष्टाओं को रोककर एकाग्रचित्त से आहुति देता है, उसको पवित्र मन मिलता है।

कुशा जल में, कुशा यज्ञ थाली में, कुशा के आसन, कुशा की पवित्री (अंगूठी या छल्ले) बनाकर उंगलियों में

पहनकर याजक बैठता व यज्ञ करता है तो बहुत लाभ उठाता है। कुशा में वह विद्युत् है जो प्राण को सूक्ष्म बनाने में सहायक होती है। यज्ञशाला में जब यज्ञ की सब क्रियाओं में कुशा विद्यमान रहे तो जैसे धातुओं को हाथ या शरीर में पहनने से दिल पर प्रभाव पड़ता है और वह सजातीय परमाणुओं को खींचता है और अपनी विद्युत् निकालते हैं। ऐसे कुशा उन परमाणुओं को खींचती है जो अपवित्रता को दूर करनेवाले परमाणु होते हैं। प्रभुदेव-हमें सामर्थ्य और योग्यता दें कि हम विधिपूर्वक यज्ञ करके जीवन सफल बनाएं।

१२. यज्ञ-श्रेष्ठतम कर्म आवागमन का कारण नहीं

यह ज्ञान कौनसा ज्ञान है जो समर्पण कराता है ?

यह ज्ञान वह ज्ञान है जो जीवात्मा विश्वास से समझ लेता है कि उसका एकमात्र आश्रय प्रभुदेव ही है। संसार की कोई भी उत्तम से उत्तम वस्तु, महान् से महान् व्यक्ति, महान् से महान् शक्ति, सब नाशवान् हैं और उसी प्रभुदेव के आश्रय पर कायम हैं।

चारों ओर से जिसे कोई आश्रय नहीं दिखता तब प्रभु की शरण में पड़ जाता है। या ज्ञान खोज से जान लेता है कि वह ही एकमात्र सबका सहारा है। तब ऐसा ज्ञान उस प्रभु के समर्पण कराता है। ज्ञानी को खोज से

और पापी को चारों ओर से निराशा मिलने पर यह ज्ञान प्राप्त होता है कि अब सिवाय प्रभु की शरण पकड़ने के और कोई आश्रय नहीं है। ज्ञानी समर्पण करता है और पापी शरण पकड़ता है। दोनों को प्रभु मुक्त करते हैं। जैसे लोहे की तलवार जो हिंसा वध करती रही दूसरी लोहे की सुन्दर मूर्ति या वस्तु, जब दोनों पारस के संग लगें तो पारस बिलातमीज (पक्षपातरहित) दोनों को सोना बना देती है। प्रभु कृपा हो जाए तो हमको कर्म और समर्पण की समझ आजाए।

प्रश्न– शास्त्रकारों ने कहा है, कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा, शुभ अथवा अशुभ **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'**।

दूसरी जगह कहा कि ज्ञान अग्नि से सब कर्म दग्ध हो जाते हैं। इनमें से कौन–सी बात ठीक है ?

उत्तर– दोनों ठीक हैं। जब तक अहंकार है तब तक राग–द्वेष और वासनाएं हैं। तब तक कर्म का फल कर्त्ता के साथ रहेगा। फलतः सुख दुःख भोगने पड़ेंगे। गरीबी अमीरी देखनी पड़ेगी। जन्म और मरण भी चलता रहेगा। जब अहंकार समर्पण होगया तब कर्म और कर्मफल–भोग सब समाप्त हो जाएंगे।

ज्ञान अग्नि में पाप कर्म दग्ध होगए जैसे एक बीज

है उसमें डण्डी, तना, शाखा, पत्ते, फूल, फल सब निहित हैं, उसके अन्दर सिमटे हुए हैं। बीज को ऋतु अनुसार बोया जाए तो सब निकलेंगे अपने अपने समय अनुसार। परन्तु बीज को बोने से पूर्व भून दिया जाए फिर कुछ भी न उपजेगा वह पत्ते शाखा तना सब स्वतः समाप्त हुए। ठीक इसी प्रकार वासना अविद्या का बीज है। उसमें संस्कार विचार प्रवृत्ति कर्मफल सब निहित हैं। जब विवेक ज्ञान होगया तो ज्ञान से अविद्या का नाश कर दिया और अहंकार समर्पण होगया। बीज बजाए भूमि में बोने के अग्नि जो पृथ्वी का देवता है उसके समर्पण हो गया तो वह सब कुछ संस्कार, विचार, प्रवृत्ति, कर्म–फल दग्ध होगए।

कर्म–फल में आयु जाति भोग होता है। वह सब के सब दग्ध होगए। इसलिए ज्ञान अग्नि से सब कर्म–फल और कर्म दग्ध हो जाएंगे। शास्त्रकारों ने कहा, यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। समर्पण इस कर्म के मुकाबले में कोई भी संसार का शुभ से शुभ कर्म बराबरी नहीं कर सकता। समर्पण शरणागत होना ही बड़ा कर्म है।

१३. पूर्णमासी यज्ञ

प्रभुदेव की सृष्टि कितनी विचित्र है, प्रभु का प्रकाश भी कल्याण के लिए और अन्धेरा भी कल्याण के लिए है।

अमावस्या और पूर्णमासी अपने–अपने स्थान में पूर्ण हैं और दोनों का निवासस्थान पूर्व दिशा में सूर्यनारायण अपने देव के चरणों में रहता है। अमावस्या अन्धकार में पूर्ण है, पूर्णिमा प्रकाश में पूर्ण है।

प्रत्येक पशु, पक्षी, कीट, पतंग तक भी अपनी जाति के स्वाभाविक ज्ञान में पूर्ण हैं। वाह रे मनुष्य तू पैदा तो हुआ पूर्ण परन्तु रहा सदा अपूर्ण। तू प्रभु का अमृत पुत्र कहलाता है, तू ही अमर हो सकता है, तेरा ही जन्मसिद्ध अधिकार है, सबसे श्रेष्ठ है, यह समस्त संसार तमाम प्राणियों के लिए भोग का स्थान है परन्तु तेरें लिए तो भोग और अपवर्ग (मुक्ति) दोनों है।

अधूरा रहेगा तो भोग ही भोगता रहेगा, पूरा बनेगा तो अपवर्ग (मोक्ष) को प्राप्त करेगा।

जहां दुःख, क्लेश, जरा, मृत्यु का नाम निशान नहीं–साक्षात् ब्रह्म–आनन्द स्वरूप भगवान् हैं।

तीसरा आनन्दमय वास होगा। जहां चाहे स्वतन्त्रता स्वेच्छा से विचरण करे।

चाहना तो तेरी बनती है मगर करने को तैयार नहीं, चाहना आसान है पर करना कुछ कठिन प्रतीत होता है। आलस्य प्रमाद को त्याग चन्द्रमा की तरह निरन्तर अपने देव का आसरा ले। शरण लेकर संसार के कर्म और भोग में विचरता हुआ उसी की ओर सम्मुख रहो।

१४. मानवता, मनुष्य जन्म का लक्ष्य गुरु अविद्या बन्धन से किस प्रकार छुड़ायेगा

मनुष्य का बच्चा जन्म लेता है तो उस समय उसकी क्या अवस्था होती है ?

१. वह बन्धा हुआ आता है।

२. ढ़का हुआ आता है।

३. लदा हुआ आता है।

क) पेट नाभि के साथ एक नाड़ रूपी रस्सी से बन्धा हुआ होता है। जब तक वह नाड़ काटी नहीं जाती तब तक वह श्वास नहीं ले सकता। न तो उसके जीने का पता होता है न मुर्दा होने का पता होता है।

ख) सारा शरीर एक झिल्ली के पर्दे में ढ़का हुआ होता है। जब तक यह पर्दा फाड़कर उतारा न जाए तब तक य़ह पता नहीं कि वह लड़का है या लड़की, गौरा है या काला।

ग) सारे शरीर पर लोभ और अपवित्रता होती है गोया सारा शरीर अपवित्रता से लदा होता है।

१) यह नाड़ क्या है ? अविद्या अज्ञान की रस्सी है। इस नाड़ से माता के गर्भ में जीव को खुराक मिलती है। अर्थात् जीव भोग की लालसा से बन्धा हुआ है। जब तक यह भोग लालसा की रस्सी कट न जावे तब तक वह जन्म मरण के चक्कर से छूट नहीं सकता।

२) दूसरा वह पर्दा क्या है जिससे वह कैदी बना या ढ़का हुआ है ? वह पर्दा है अज्ञान का, जिससे इसको अपनी असलियत प्रकट नहीं होती। वह अज्ञान दो प्रकार का है।

१) जिसको जानता है उसको मानता नहीं।

२) जिसे मानता है उसे जानता नहीं।

क) जानता है कि मौत जरूरी है, जो जन्मा है वह मरेगा। सैंकड़ों आदमी अपनी आंखों के सामने मरते देखे–स्वयं श्मशान में कइयों का दाह–संस्कार किया या देखा और कितने ही जीव अपने घर में मरे देखे–मां मरी, बाप मरा, भाई–बन्धु, पुत्र, स्त्री, चाचा इन सबकी मृत्यु अपनी आंखों से देखी और खूब रोया, अफसोस किया। यह जानते हुए कि मौत तनिक नहीं मानती, इच्छाएं–कामनाएं और उनके सामान बढ़ाए चला जा रहा है।

ख) मानता है कि प्रभु कर्मफलदाता है, न्यायकारी और सर्वशक्तिमान् है। अपनी आंखों के सामने देखता है कि कोई अन्धा सड़क पर पुकार रहा है–

बाबा आंखें बड़ी नियामत हैं परमात्मा के वास्ते मुझ मोहताज की मदद करो। लूले, लंगड़े, कोढ़ी कतारों में बैठे पुकार रहे हैं भगवान् के नाम पर, गंगा मैया के नाम पर पैसा रोटी हम दीनों को दे जाओ।

कितने भिखारी रेलों में, मोटरों लारियों में, गली कूंचों में दर–दर मांगते दिखाई देते हैं। बड़े–बड़े धनी जो राजभवनों में निवास करते थे। मोटर कारें चढ़ने को थीं तो क्या आज रोटी के लिए लाचार होगए हैं, नौकरी की तलाश में सर गरदान फिरते। इन्हें देखकर अनायास कहता है–

वह प्रभु कर्म-फलदाता बड़ा जबरदस्त है

परन्तु जब कोई ग्राहक आता है तो उसे लूटते समय इस कर्मफलदाता सर्वशक्तिमान् को भूल जाते हैं। यदि पर्दा उठ जाए तो अज्ञान मिट जाए और फिर अपनी असलियत का ज्ञान हो जाए और जन्म–मरण के बन्धन से छूट जाए।

शरीर किस से लदा हुआ है ? असंख्य पापों की मैल से लदा हुआ, जब तक दाई उसके नापाक शरीर को पवित्र नहीं कर लेती, उसके लोमों को पूंछकर झाड़ नहीं देती तब तक बच्चा चाहे कितना ही क्यों न चिल्लाता रहे जननी, जिसे बच्चे की अति लालसा है उसे अपनी छाती के साथ लगाने को तैयार नहीं होती। जब स्नान कराया, पवित्र हुआ तब मां छाती से लगाती है। बच्चा जन्म पुकार से शान्त हो जाता है और माता के अमृतमय दूध का पान करता है। ऐसे ही जब मनुष्य पापों से

विरक्त हो जाता है तब जगत्–जननी माता उसे अपनी शरण में लेती है और अपना अमृत–रस पान कराकर शान्त कर देती है। इन तीन बातों से छुड़वाने के लिए गुरु प्रतिज्ञा करता है।

वाचं ते शुन्धामि

इसके लिए शिष्य घुटने टेक, हाथ जोड़ गुरुचरणों में आता है और गुरु उसे गुरुमन्त्र गायत्री सावित्री का उपदेश करते हैं इस गायत्री से यह सब बन्धन दूर कराता है।

इसलिए ए मानव ! इस मानव देह में–

१) यदि बना सकते हो तो कुछ बना लो। क्या बना लो ? जीवन बना लो–किसका ? अपना जीवन।

२) यदि कर सकते हो तो कुछ कर लो। प्रेम कर लो–किस से ? प्रभु से, परमेश्वर से।

३) यदि कमा सकते हो तो कुछ कमा लो। क्या कमा लो। नेकी कमा लो, किस से ? प्रभु की प्रजा से।

यदि इस देह में न बनाया, न किया, न कमाया तो पछताओगे, बन्दी बनाए जाओगे।

प्रभु हम हम सचेत होजावें और जन्म सफल बनावें।

१५. गायत्री यज्ञ-गायत्री का महत्त्व

आदरणीय महानुभावो व पूज्य माताओ !

यह यज्ञ गायत्री मन्त्र द्वारा हो रहा है, इसलिए मुझे गायत्री के सम्बन्ध में कुछ कहना है। यद्यपि आप सब धर्म–प्रेमी सज्जन नर गायत्री का जप करनेवाले हैं और मन्त्र को समझा हुआ भी है यद्यपि उसकी व्याख्या नित्य नया रूप दर्शाती है। इस मन्त्र की अति महिमा है। शास्त्रीय दृष्टि से इसकी महिमा या विशेषता चार त्रिकों में है–

१) प्रथम त्रिक में ऋषि–देवता–छन्द के कारण विशेषता है।

२) दूसरे त्रिक में आध्यात्मिक जीवन के स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप तीनों अंगों की यहां विद्यमानता होने से है।

३) तीसरे त्रिक में–भूः भुवः स्वः तीन महाव्याहृतियां अन्तर–आत्मा में व्याप्त करने योग्य भावनाएं ईश्वर के सम्बन्ध में हैं।

४) चौथे त्रिक में ईश्वर के वाचक ओ३म् की अ–उ–म् तीन मात्राओं के कारण विशेषता है।

इस प्रकार इस मन्त्र में चार त्रिकों में १२ शास्त्रीय विशेषताएं या महानताएं हैं।

ओ३म् की महिमा अ–उ–म् की अलग–अलग जानने और समझने में है। इसको उपासक ही जान सकता है। वह योगी उपासक ही जान सकता है। साधारण जप करनेवाले या पढ़ा हुआ पण्डित तो ओ३म् के अर्थ 'अव' धातु से बना–रक्षा करनेवाला करेगा और अधिक से अधिक ओ३म् के १८–१९ अर्थ लगाकर बता देगा। यह जानना और समझना कि 'अ' एक मात्रा की जो उपासना करता है वह संसार का नेता बनता है; दो मात्रावाले ओं अ–उ को जो जानता है और समझता है, उपासना करता है उसके घर में वेदवक्ता सन्तान पैदा होती है और तीन मात्रावाले अ–उ–म् की जो उपासना करता है उसकी सारी वासनाएं समाप्त हो जाती हैं। ऐसे ओ३म् की इन तीन मात्राओं को जाननेवाला कोई–कोई होगा।

जो लोग ऐसे अन्धा–धुन्ध या जानकर कि ओ३म् ही सर्वश्रेष्ठ है महामन्त्र है इसका जाप करने लग जाते हैं। गायत्री का जाप उन्हें व्यर्थ दू–भर प्रतीत होता है वह बेचारे आरामतलब, मेहनत–चोर होते हैं। अधिकारी ही ओ३म् का जप कर सकता है।

१६. गायत्री यज्ञ अनुष्ठान

आदरणीय महानुभावो व पूज्य माताओ ! आपका बड़ा सौभाग्य है, प्रभु की आप पर महान दया है कि

आपको साल में अनेक बार यज्ञ में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त होता है। यज्ञ और गायत्री दोनों का अनुष्ठान मनुष्य को महान् बनानेवाला होता है। प्रभु की आशीर्वाद धारा अपने भक्तों पर सदा बरसती है।

मैं एक नई बात आपको बताता हूं जो मुझे प्रभु की महान् करुणा से प्राप्त हुई है

गायत्री का जप अनुष्ठान मालिश का काम करता है। गायत्री के सच्चे उपासक का हृदय इस मालिश से ऐसा लचकदार, नरम आर्द्र हो जाता है जैसे तेल की मालिश से चर्म (शरीर की खाल) लचकीली बन जाती है।

गायत्री अनुष्ठान के साथ यज्ञ करनेवाले के मस्तिष्क (दिमाग) में बुद्धि का ऐसा पालिश हो जाता है जैसे कोई पदार्थ पालिश करने से चमकदार दिखाई देता है ऐसे साधक की बुद्धि भी चमकीली बन जाती है। उस चमक में उसे सब कुछ नज़र आने लगता है। जप यज्ञ करते–करते साधक के अन्तःकरण और बुद्धि सबसे पहले 'हितबुद्धि' बन जाती है। दूसरे नम्बर पर 'मातृबुद्धि' और अन्त में 'देवबुद्धि' बन जाती है। उसकी आलस्य, प्रमाद, कठोरता सब भाग जाती है। पुरुषार्थ परमार्थ, सरलता, पवित्रता अपने स्थान बना लेती है।

अपनी पापवृत्तियां, पापवासनाएं जप करते ही सामने

नाचने लगती हैं और व्याकुल कर देती हैं और ऐसा समझता है कि मेरा जीवन अकार्थ गया, मैं **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** की प्रेरणाओं को समय पर न समझ सका। इस दुःख से दुःखी होकर उसके अश्रुपात होने लगते हैं और प्रभु का आशीर्वाद उसे पापवासना से मुक्त कर देता है। मानो कि **भर्गः शक्ति** जो पापविनाशक तेज है जाग जाया करती है।

दूसरी बात—दूसरे के दुःख को देखकर इसके हृदय में उसके निवारण करने की तड़प पैदा हो जाती है, हृदय पिंघल जाता है।

तीसरा—गुणवालों और सुखियों को देखकर वह सदा ही हर्षित होता रहता है। ईर्ष्या उससे कोसों दूर भाग जाती है, उसकी मित्रता उनके साथ बन जाती है, सदा शांत रहने लगता है। प्रभु करे कि हम सबमें ऐसी अवस्था पैदा हो जाये जिससे हम सच्चे भक्त प्रभु के बन सकें।

१७. साधक को संयम का संकेत व प्रोत्साहन

आदरणीय गुणवन्त श्रीमन्त..........सप्रेम नमस्ते।

आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ ! हालात जाने ! धन्यवाद !

प्यारे ! जब प्रभु की कृपा होने लगती है तो वह

मनुष्य के पूर्वजन्मों के सोए पुण्यकर्मों को जगाता है। उन पुण्य कर्मों का फल देने के लिए अन्तःकरण में प्रेरणा करता है। वह प्रेरणा शब्द या रूप की सूरत में दृष्टिगोचर या अनुभव होने लगती है। बस फिर उस मनुष्य के पुण्य संस्कार जाग उठते हैं, उसे सच्चे मार्ग या जीवन के ध्येय की ओर लगा देते हैं।

अब आपका कर्त्तव्य यह है कि प्रभु की इस कृपा को सदा अपनी स्मृति में रखो। अधिक से अधिक भगवान् की कृपाओं को प्राप्त करने के अधिकारी बनावें।

आपने प्रतिज्ञा एक हजार की कर ली–बहुत ही अच्छा किया, मुबारक हो।

साल–भर की जो प्रतिज्ञा की—यह प्रतिज्ञा ही जीवन उन्नति का साधन बनेगी। बिना व्रत किये कोई भी मनुष्य कामयाब नहीं होता। कोई कठिनाई नहीं होगी, आप विश्वास रखें। जब मनुष्य किसी नेक काम को प्रभु का भरोसा, उसकी शरण में जाकर करना आरम्भ करता है, तब प्रभु जी स्वयं सहायक बनते हैं। हां जब मनुष्य अपने अहंकार पर भरोसा करता है तो वह क्षणिक बल देकर फुस हो जाता है। आप जब गायत्री माता की शरण ले रहे हैं तो माता तो वरों की देनेवाली और रक्षा करने वाली है। **मेरी शुभाशीष आपके साथ है ! आप विश्वास रखें। प्रभु आप पर अपनी अमृत वर्षा करेंगे ! अवश्य करेंगे।**

प्यारे आप बड़े भाग्यशाली हैं आपकी गृहस्थिनी सच्ची देवी आपके धर्म की रक्षिका धर्मपत्नी है, प्रभु देव उसे बल देवेंगे।

बस इतना जरूर ख्याल रखना कि शरीर को सुखाना नहीं। खुराक सदा सात्त्विक, हल्की और थोड़ी जरूर लिया करें। शरीर को कष्ट न हो, शरीर हार न जाए रात्रि को दूध या फल एक चीज जरूर लिया करें, भगवान् आपके साथ हैं।

और सब कुशल। जब–जब जरूरत पड़े बेशक पत्र लिख दिया करें।

१८. व्रत में गृह-पत्नी का सहयोग व कर्त्तव्य

आदरणीय पुत्री............शुभं भवतु

सादर नमस्ते। आपका पत्र मिला आपके पति का भी। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। अब तो प्रभुदेव ने तुम्हारे खूब भाग्य उदय किए। तुम्हारी तपस्या, पतिव्रत धर्म अवश्य फल लाएगा और ला रहा है।

ध्यान से सिर चकराता है, दर्द करता है, उसका कारण सिर की कमजोरी है। सिर की नाड़ियों में मल (बलगम) भरा है, प्राण जोर करता है ऊपर जाने को उसे रास्ता नहीं मिलता, वह आघात मारता है जिस से दर्द होता है। करो तो जरूर मगर थोड़ा कर दो। मैं जब आऊंगा देखकर सही बता सकूंगा।

पति के व्रत की रक्षार्थ आपका कर्त्तव्य है कि उनका व्रत अवश्य सुगमता से पूर्ण हो। समय पर हित मित भोजन देना (मित=तोल माप का—हित=जो ब्रह्मचर्य की रक्षा करे)। खटाई, मिर्च, मसालेदार भोजन न देना। सिनेमा आदि न जाने देना—रात्रि को अधिक न जागने देना, बहुत न सोने देना—जिससे ब्रह्मचर्य न गिरने पावे बहुत गर्म पदार्थ न खिलावें, ठण्डे देवें।

बस यही आपका कर्त्तव्य है, शेष कुशल।

१६. ओ३म् प्रभु रक्षक

परमेश्वर का नाम ओ३म् है। ओ३म् का अर्थ है रक्षा करनेवाला। यह प्रभु का स्वाभाविक गुण है। मनुष्य में ही प्रभु ने यह गुण स्वाभाविक रखा है। परमेश्वर जगत् और जीवों की रक्षा करता है। मनुष्य अपनी और अन्य जीवों की रक्षा करता है। जीवों की रक्षा होती है, ज्ञान और बल से। परमेश्वर अपने ज्ञान और बल के द्वारा रक्षा करता है। परन्तु मनुष्य तीन चीजों से रक्षा करता है। ज्ञान, बल और कर्म के साधन से। परमेश्वर के बल का नाम है—प्रेरणा, वह अपनी प्रेरणा द्वारा जीवों की रक्षा करता है। परमेश्वर ने मनुष्य को हाथ दिये हैं जो अपनी शरीर रक्षा स्वभाव से करते हैं। शत्रुओं से मक्खी, मच्छर, जन्तुओं से। सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास, खुजली और अन्य

दुश्मनों से भी अपनी रक्षा हाथों द्वारा होती है। हांथों का देवता इन्द्र है। इन्द्र ही सब शक्तियों और सम्पत्तियों का स्वामी है **"इन्द्रो विश्वस्य राजति"**। इसी कर्म रक्षा का नाम यज्ञ है। यज्ञ का देवता भी इन्द्र है। गिरे को उठाना, डूबते को बचाना, लगी आग को बुझाना, ठिठुरे के लिए आग लगाना, भूखे को अन्न खिलाना, प्यासे को पानी पिलाना, हमलावरों से बचाना, घेरे से बाहर निकाल ले जाना, यह सब इन्हीं हाथों का काम है। यज्ञ का होता आहुति देनेवाला भी हाथ ही होता है। इसलिए यज्ञकर्त्ता में निम्न गुण होने आवश्यक हैं—

१) परमात्मा और मनुष्य की रक्षा में भेद है। प्रभु सर्वशक्तिमान् है उनका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। मनुष्य जब दुश्मनों से रक्षा करता है तो शत्रु भी मुकाबला (प्रतिकार) करते हैं। इसलिए मनुष्य में बल होना चाहिए—कैसा बल ? सहनशीलता का बल।

एक व्यक्ति नदी में सर्दी की ऋतु में डूब रहा है। रक्षा करनेवाला सर्दी सहन नहीं कर सकता तो डूबते को बचा न सकेगा। निकाल न सकेगा। उसमें सर्दी, गर्मी, भूख–प्यास, मान–अपमान के सहने की शक्ति होनी चाहिए। किसी जालिम के पंजे से फौरन मनुष्य मजलूम को बचाता है, जालिम गालियां देता है। अपशब्द बोलता

है या पगड़ी उतार लेता है या सिर पर जूता मार देता है। यदि रक्षक में मान–अपमान का ख्याल रहेगा तो रक्षा नहीं कर सकेगा। इसलिए ऐसे उत्तम यज्ञ–कार्य करनेवाले रक्षक का सहनशील होना आवश्यक है।

भक्त प्रार्थना करता है प्रभु से—**सह नौ अवतु**—दूसरे की भूख को देखकर, प्यास को देखकर, स्वयं भूख–प्यास सहन करने की शक्ति रखता हो तो अपना अन्न–जल देकर रक्षा कर सकता है।

एक राजा शान्तिदेव नाम का बड़ा दानी था। रिआया परवर (प्रजापालक) था। उसकी प्रजा में दुर्भिक्ष पड़ गया। सारा कोष लगा दिया तब भी अकाल न हटा, प्रजा निकल गई। राजा स्वयं भी रानियों बच्चों सहित निकल गया। कई दिन भूख से काटे। भजन करते रहे, इन्द्र देवता प्रसन्न हुए। सोने के थाल में उत्तम–से–उत्तम भोजन और मीठा जल परोसकर उनके सामने लाए। सबने हाथ–मुंह धोए। खाने को तैयार हुए तो धर्मपत्नी ने कहा—राजन् पहले हमें खाने का हक नहीं, शास्त्रमर्यादा अनुसार पहले किसी अतिथि को ढूंढो। शायद कोई इस वन में भी भूखा हो। थोड़ी देर में एक अतिथि आया, साधु था। कहा मैं भूखा हूं, थोड़ा–थोड़ा करके सब अन्न उसे खिला दिया। शुक्र किया कि चलो जल है तृषा बुझाओ।

पानी पीने ही लगे थे कि एक प्यासा आ गया। कहा कई दिनों से प्यासा हूं तो राजा ने जल भी उसे सारा पिला दिया और फिर शुक्र किया कि प्रभुदेव आपने सहनशक्ति दी है और कर्त्तव्यपालन करवाया है।

आकाशवाणी हुई कि राजन् ! हम तुम पर बड़े प्रसन्न हैं। आओ अब स्वर्ग का राज्य तुम्हारे लिए है। राजा बोला, भगवन् ! मुझे राज्य नहीं चाहिए, स्वर्ग भी नहीं चाहिए। मुझे भजन का वरदान दीजिए, दीन दुखियों की सेवा के लिए सहनशक्ति दीजिए। इसलिए भक्त कहता है दूसरी चीज **'सह नौ भुनक्तु'**। यज्ञ करनेवाले में मिलकर कार्य करने का उत्साह बना रहे। दूसरों को उत्साहित करता रहे। मनुष्य में विद्या, धर्म कार्यों में तेज हो, जिससे कमजोरी पापसहित उसके सामने न आ सके और अन्त की बात यह कही कि **'मा विद्विषावहै'** किसी यज्ञ करनेवाले में द्वेषवृत्ति न जगे, ताकि उसका किया यज्ञ और जीवन सफल हो। प्रभु करे हम में ये गुण आएं। ओं शम्।

२०. शान्ति के पांच गुर

आदरणीय माताओ !

वेद परमेश्वर की कल्याणी वाणी है। आज संसार में अशान्ति है। शान्ति का राज्य तब स्थापित हो सकता

है जब मानव समाज वेद के अनुकूल आचरण करेगा। पांच बातें प्रत्येक मनुष्य को ध्यान में रखनी चाहिएं।

१) बुद्धि से जानो, २) मन से मानो, ३) इन्द्रियों से भोगो, ४) प्राणों से रोको, ५) किसी की बुद्धि को अपने अधीन मत बनाओ बल्कि उसको अपने अनुकूल बनाना सीखो।

क) तब संसार में शान्ति होगी अब समझो बुद्धि से क्या जानो ? जो सदा से प्राप्त है उसे जानो। वह कौन है ? वह है परमेश्वर, जो सबमें बस रहा है—**'ईशा वास्यं इदं सर्वम्'**।

ख) मन से क्या मानो ? मौत को मानो, जो सब के लिए आगे खड़ी है। संसार में जो कुछ भी है वह सब नाश की ओर जा रहा है—

'यत्किञ्च जगत्यां जगत्'

ग) इन्द्रियों से कैसे भोगो ? त्याग भाव से भोगो, वह त्याग तीन प्रकार का है—

१) पदार्थ वस्तु को दीन दुखियों में और अधिकारियों में बांटकर खाओ। खाने से पूर्व उनका भाग पहले निकालो।

२) दूसरा त्याग, पदार्थ वस्तु के त्याग का है (स्वाद के लिए न खाओ)।

३) तीसरा त्याग, वस्तु पदार्थ की आसक्ति का त्याग करना।

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'

घ) प्राणों को किससे रोकें ? जो चेष्टाएं क्रोध, लोभ आदि की प्रवृत्तियों को उत्पन्न करती हैं वे सब प्राण से उत्पन्न होती हैं इसलिए जो प्राणों को रोकता है वह चेष्टाओं से बचता है।

ङ) नौकर को नौकर समझना बुद्धि को आधीन करना है। जब नौकर से सलाह ली जावे तो वह अनुकूल बन जायेगा।

यही मर्यादा सीखने--सिखाने योग्य है तब संसार में शान्ति का राज्य हो सकेगा। प्रत्येक मनुष्य को इन पांच बातों का ख्याल रखना चाहिए यदि वह शान्ति का इच्छुक है।

प्रभु करे हम सब वेदों के अनुयायी बनें, प्रभु हमें ऐसी सुमति प्रदान करें।

२१. मानवता

प्यारे धर्मप्रेमियो ! प्रभु का प्यारा नाम ओ३म् है। हमारे सब शुभ काम यज्ञ आदि ओ३म् ही से आरम्भ होते हैं और मानव का नवजात बालक जन्मते ही इसी नाम की पुकार 'ऊआं ऊंआं' के रूप में करता है। इसका

अर्थ है रक्षक—कोई प्राणी दूसरे की रक्षा नहीं कर सकता—एक मनुष्य है जो अपनी और दूसरे की रक्षा कर सकता है कहीं ज्ञान के द्वारा, कहीं कर्म के द्वारा। हां जब ज्ञान और कर्म में मैल आजाती है तब रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ज्ञान इन्द्रियों में आंख, नांक, कान, जिह्वा और त्वचा से मैल निकलता है। यह मैल सब अन्दर से उपजता है। कर्म इन्द्रियां गुदा, मूत्रेन्द्रिय हाथ—पांव, वाणी में भी इसी तरह मैल आजाती है या निकलती है। ऐसे ही ज्ञानी और कर्मकाण्डी में मैल का आजाना सम्भव है। ज्ञान में मैल है अहंकार का, जो क्रोध के रूप में बाहर प्रकट होता है।

कर्म में मैल है मोह का, जो लोभ के रूप में प्रकट होता है। इनकी उत्पत्ति होती है काम से। कामना से। अपने सुख, आराम, अपने यश, अपने बड़प्पन की कामना, कामना के त्याग से ही सब का त्याग हो सकता है, वरना नहीं।

हम किसी की रक्षा सहायता तब कर सकते हैं, जब हमारा उसमें अपनापन हो, अपनापन तो स्वार्थ का कारण होगा या मानवता के नाते हमदर्दी, इसमें चार चीजें हैं—

१) प्रीति, २) रक्षा, ३) सहायता, ४) सेवा।

इनकी कामयाबी होगी पुरुषार्थ से। बिना पुरुषार्थ

कामयाबी मुश्किल होती है। यदि पुरुषार्थ स्वार्थरहित है, सच्चा प्रेम है तो प्रीति रक्षा सहायता सब यश देगी, सुख और शान्ति देगी वरना अपयश और अशान्ति होगी।

रक्षक–सहायक तो शरण या आश्रय होता है और जिसकी रक्षा की जाती है वह शरणागत होता है। जैसे पत्नी–पति, शिष्य–गुरु, प्रजा–राजा, फरियादी–हाकिम, मित्र और मित्र। शास्त्रकारों ने कहा है **'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु'**। हम एक दूसरे के सहायक बनें, एक दूसरे के पालक–पोषक बनें। जहां अपनापन होगा वहां ही आनन्द, सुख, भोग एक बराबर होता है, दुःख भी एक बराबर होता है। प्रभु आशीर्वाद देवें कि हम एंक–दूसरे की रक्षा कर सकें और जन्म सफल करें।

२२. भक्तजी खूब अच्छी तरह समझ लेवें

प्रिय भक्तजी !

भक्तजी फिर कहीं मायूसी का गिला न करें, दोबारा आने का कष्ट किया इसलिए प्रातः भजन में चन्द वाक्य उनको तसल्ली के लिए लिखने का स्फुरण हुआ।

१. भक्त तो वह है ही, सिर्फ फर्क इतना है कि वह चाहते हैं मैं भगवान् के पास जाऊं और भगवान् कहते हैं कि अभी तू अलबेला बच्चा है। वहां न बच्चों का काम है न जवानों का, न बूढ़ों का, भगवान् तो किसी को

अपने पास बुलाते नहीं, न किसी को आने देते हैं। वह आप स्वयं पहुंचते हैं और ले जाते हैं जिसे वह चाहते हैं।

२. फिर किनको चाहते हैं ? i) जो आयु से बहुत–बहुत बूढ़े हों जिनकी तपस्या कई जन्म जन्मान्तरों की हो और ii) साथ ही बल में पूर्ण जवान हों (जिनका ब्रह्मचर्य परिपक्व हो) और iii) साथ ही नन्हें बच्चे हों। (जिनके हृदय सरल–अभिमान, मान अपमान हानि लाभ से अनभिज्ञ हों और एकमात्र अपने माता–पिता पर ही निर्भर रहनेवालों की तरह प्रभु में आश्रित हों)।

३. जब तक ये तीन बातें मनुष्य में न आवें उन्हें अभी देर समझनी चाहिए। हां प्रभु के लिए लाईक (इच्छा) होने और साधन भजन करने के सबब से उनका नाम भक्तों में गिना जाता है।

४. परमात्मा की आत्मा का योग होने से पूर्व मन और इन्द्रियों का आत्मा से योग होना आवश्यक है। मगर मन चंचल है यह मान बड़ाई में अधिक आनन्द मानता है। खाने–पीने पहनने का आनन्द तो इन्द्रियों की गुलामी से उसे मिलता है। मगर मान बड़ाई का आनन्द इन्द्रियां नहीं लेती। वह मन देवता आप ही लेता है। इसलिए २४ घण्टे चंचल रहता है। वह गाता, बजाता, पढ़ता–पढ़ाता, सेवा उपदेश करता हुआ भी इसलिए आनन्द मनाता है

कि उसका यश मान लोग करते रहें। यह यश घेरा दायरा बनाकर उसके शरीर के इर्द–गिर्द रहता है और जब कोई सामने प्रशंसा करनेवाला न हो तो वही घेरा कानों में मन के अन्दर अपनी मान बड़ाई सुनता–सुनाता रहता है। अक्स (प्रतिबिम्ब) डालता रहता है। बस इससे मन चंचल बना रहता है। २४ घण्टे इसी में डूबा रहता है। मेरा तो दिन–रात पीछा नहीं छोड़ता। प्रभु कृपा हो जाए तो इससे छुटकारा मिल जाए। तब फिर प्रभु की समीपता हृदय में होगी।

५. साधन तो बहुत हैं मन को स्थिर एवं शांत करने के मगर मेहनत और वक्त बहुत लगता है। घर में रहते हुए प्राणायाम भी सुगम उपाय नहीं है। भक्त जी का प्राणायाम गलत होगया, सिद्ध न हो सका, इसके दो कारण होते हैं– १) वीर्य की निर्बलता, २) मान की बहुत इच्छा–इन दोनों से मन चंचल रहता है प्राण रुक नहीं सकता। प्राणायाम करते हुए भी मन अपनी करतूत नहीं छोड़ता।

६. भक्त जी का स्वर बहुत सुन्दर है मगर इसमें गम्भीरता, धैर्य नहीं है। उतावल में और तेजी से वह रिझा नहीं सकता। बच्चों की चिलचिल भी सुरीली होती है मगर पसन्द सगे मां–बाप को आती है। दूसरे लोग तंग

आ जाते हैं वे नहीं रीझते। आज मैंने उसके वेद के उच्चारण को बड़े ध्यान से सुना बहुत प्रशंसायोग्य था कि शुद्ध और बहुत तीव्र पढ़ सकता है। यह है पण्डिताई का महत्त्व। इससे कान तो बेशक स्वाद लेते हैं। मगर भक्ति की प्रशंसा नहीं करता। जब प्रभु की मधुररसमयी वाणी में जो बहुत गम्भीर वाणी है, धीरे–धीरे गम्भीरता से उच्चारण करता हुआ मधुर रस से पान करता और कराता। बेशक मंत्र बहुत थोड़े हो सकते हैं मगर रोम–रोम भक्ति के रस से भीग जाता है। भक्ति का रस शरीर की जिस नाड़ी में जाता है उस नाड़ी की वासनाएं विचार सब सो जाते हैं यह मैंने अब ध्यान (योग) द्वारा अनुभव किया। यही स्वर गान करनेवाले को तो किसी भी और साधन की आवश्यकता नहीं होती। स्वर गीत स्वयं प्राणायाम धारणा ध्यान का काम करते हैं मगर ऐसे एकान्त में गाओ, रस लो, मस्ती और समाधि का आनन्द आने लगेगा। प्राणायाम की आवश्यकता न रहेगी फिर वही स्वर अपने शरीर के बाहर घेरा बनाकर साथ रहता है जैसे छाया शरीर की—तब मन में दूसरा विचार सिवाय भक्ति के पैदा नहीं होगा।

७. अब मैं प्राणायाम को भान्ति–भान्ति करने के लिए एक उपदेश लिखता हूं

अ) आसन लगाकर जोर से रेचक करो, रेचक करते समय पेट को अन्दर सुकेड़ते जाओ। गुदा को ऊपर सुकेड़ते जाओ, बाहर प्राण रोक लो जितना बहुत आसानी से रुक सके, फिर पेट फुलाकर अन्दर पूरक करो और रोक दो आसानी से। फिर आहिस्ता–आहिस्ता बाहर निकाललो, यह एक प्राणायाम है। अब चूंकि बल नहीं है २–३ श्वास मामूली ले लो फिर प्राणायाम उपरोक्त रीति से करो, ऐसे ३ प्राणायाम प्रातः सायं तीन दिन तक।

ब) फिर चौथे दिन से सातवें दिन तक सात प्राणायाम– एक–एक के बाद २–३ श्वास मामूली विश्रामार्थ ले लें।

स) फिर दूसरे सप्ताह में पहुंचे। तीन दिन में ११ प्राणायाम और शेष चार दिन में १५ प्राणायाम, फिर तीसरे सप्ताह में २१ प्राणायाम तक। मुख्य बात यही है कि हर एक प्राणायाम के बाद विश्राम जरूर ले लें, इससे ठीक कर लेंगे चंचलता हट जाएगी, फिर चौथे सप्ताह में दो प्राणायाम करके विश्राम लो, जब तक २१ तक न पहुंचे, मगर एक प्राणायाम के बाद चूंकि दूसरा भी करना है, इसलिए जोर से रेचक दूसरे प्राणायाम में न करना, आहिस्ता रेचक करना। ऐसे फिर २१ तक पहुंचने के बाद हर ३ प्राणायाम के बाद विश्राम–२१ दिन तक ले जाओ फिर ४ प्राणायाम के बाद विश्राम। यही तरीका है सर्दी की ऋतु तक। ओ३म् शम्।

२३. भक्त अवगुण निकालदे; सद्गुणों को प्रभु परिपक्व करेंगे

श्री भक्तजी के प्रश्नों का उत्तर !

मुझे क्या बनाना चाहते हो ?

जो पैदा करनेवाला है, वही बनानेवाला है। किसी मनुष्य की ताकत नहीं कि वह पशु को मनुष्य बना सके—प्रभु जिसने नस–नस, नाड़ी–नाड़ी को रचा है। यद्यपि सब को एक ही समान तत्त्वों से रचा है मगर शक्ल, अक्ल, कद, रंग, रूप, आयु और भोग सबका एक समान नहीं—सबके अपने–अपने कर्मानुसार बनाया है। सबको पशु के रूप में पैदा किया और सबका विकास उनके कर्म अनुसार वह स्वयं कर रहा है। जैसे मां अपने बच्चे को जिस योग्य हो, समय के अनुसार अधिकार देती व देखती है; दूध के बाद अन्न, उठना–बैठना, खड़ा होना, चलना, बात करना, सबकी पहचान कराना स्वयं कराती है बिना कहे बच्चे के। ऐसे वह निर्माता माता प्रभु देव सबके विकास का रास्ता स्वयं बनाते रहते हैं। तोड़–मोड़ और जोड़ आप बनाते, साधते दिखाते हैं। इन्हीं पर भरोसा रखकर निश्चिन्त और निराशा रहित होकर बिना जल्दी मचाए जिस हालत आश्रम में रखा है वह कार्य करते जाना काफी है। इससे हम से अधिक फिक्र

है। विकास की गति सदा मन्द हुआ करती है। बन्दर की तरह छलांग नहीं लगा करती—हां जिसके जन्म जन्मान्तर के तप हुए उनकी छलांग भी लगवा देता है। नहीं तो गीता का वाक्य, जनक आदि अनेक जन्मों के तप कर्मों से सिद्धि को प्राप्त हुए। प्रभु के मिलने के लिए भक्त को अनन्त काल की मियाद है फिर काहे की चिन्ता ? यदि ऐसा विश्वास हो कि भक्त जब एक कदम बढ़ाता है तो प्रभु अपने दस कदम आगे नजदीक बढ़ाते हैं। योगी कहते हैं केवल भक्त ही प्रभु की लालसा नहीं रखता अपितु प्रभु भी भक्त के लिए तरसते हैं। परन्तु 'अहं मम' की दीवार आवरण आत्मा पर आ जाने से प्रकाश का मार्ग रुका हुआ है। और यह आवरण तभी उठता है जब प्रभु भक्त को इस योग्य देखते हैं। इस 'अहं मम' को मेरी कापी में पढ़ लेवें। आप को अब इतना सोचना है कि आप की लगन एक मलेच्छ बस्ती में पैदा होकर इस तरह कैसे लगी। बस उस से शुरू करके आखिर तक अपने जीवन का आत्म–निरीक्षण करलो कि कितनी उन्नति की है, क्या यह प्रभु की अपनी कृपा नहीं ? किसी और की है ? या आप की मेहनत है ?

यह एक कुदरती सिद्धान्त है कि जोरावर जमीन में उत्तम बीज बोया जाये तो घास गन्द खुदरो बार–बार

उग आता है। किसान उसे निकालने का यत्न करता है, खेती को बढ़ाना पकाना प्रभु स्वयं करते हैं।

भक्त जी का प्रश्न— महाराज जी मैं कौन हूं आप कौन हैं, क्या दोनों की आत्मा एक नहीं ? विस्तारपूर्वक प्रकाश डालें।

उत्तर— देवता ! जो जो कुछ आपने लिखा है वह केवल पढ़े सुने शब्दमात्र तथ्य है। जब तक मनुष्य अपनी आत्मा का साक्षात् नहीं करता तब तक वह मिट्टी का माधो है। तुम और मैं दोनों अभी अज्ञानी और अहंकारग्रस्त हैं। इसलिए पर्दा शास्त्रोक्त नियम से है। जब साक्षात् होगया तब कोई बन्धन और नियम लागू न रहेगा। तुम भक्त जी हो मैं प्रभु आश्रित, इतना सत्य है। बाकी आत्मा का कहना शाब्दिक सत्य वैसे झूठं है।

२४. अनुष्ठान का रूप—कर्त्तव्यनिष्ठ गृहस्थी बनो

प्रियवर आशीर्वाद !

मैंने अपने व्रत के हजार दिनों में जिस प्रेमी ने पूछा उसे एक करोड़ गायत्री जप का अनुष्ठान बतलाया १० हजार प्रतिदिन से हजार दिन में एक करोड़ पूरा हो जाता है। अब १६० दिन कल गुजर गए और आप १२ हजार रोजाना कर सको तो आप का भी एक करोड़ ३० सितम्बर १६४७ को पूरा हो जाएगा। यम नियम का

पालन करने से अनुष्ठान बन जाता है। यम नियम का पालन न किया जावे तो उसका नाम अनुष्ठान नहीं रहता। अनुष्ठान सिद्धि के लिए अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य आवश्यक गुण हैं। इतने लम्बे अरसे के लिए एक गृहस्थी को ब्रह्मचर्य के लिए इतनी रियायत (छूट) होती है कि वह ऋतुगामी रहकर सिर्फ सन्तान उत्पत्ति के लिए उन नियुक्त तिथियों में गृहस्थ समागम कर सकता है। बिना उद्देश्य संतान उत्पत्ति के गृहस्थ समागम की आज्ञा नहीं होती वरना अनुष्ठान सिद्ध नहीं होता। जाप इत्यादि तो पूरा हो सकता परन्तु सिद्धि नहीं होती। यह तो लिखा मैंने आप की आज्ञा पालनार्थ। अब थोड़ी मति अपनी भी जतला दूं। एक गृहस्थी के लिए सबसे बड़ी भक्ति और पूजा और व्रत यही है कि वह माता–पिता की सेवा करे। कमाकर उनकी सेवा करे और कमाकर अपने परिवार का पालन और सन्तान को योग्य और सुयोग्य बनावे। दीन दुःखी की सेवा और अतिथि सत्कार करे। जब गृहस्थ धर्म को पूर्ण कर लेवे तब सब का त्याग कर प्रभु भक्ति में लीन हो जावे और अपना जीवन सफल करे। जब तक मनुष्य को ज्ञान और वैराग्य नहीं होता तब–तक आश्रय मर्यादा से चले–जब वैराग्य हो जावे तो आश्रम मर्यादा उसे लागू नहीं होगी। बेशक आपका दिल भक्ति चाहता है मगर यह भक्ति आलसी और निकम्मे आदमी

का काम है। पुरुषार्थी आदमी कर्मयोगी बनता है। सदाचार का जीवन बसर करते हुए अपने परिवार को उन्नत करता है। बाप दादा के नाम को उज्ज्वल करता है।

अपने माता–पिता परिवार की सेवा करे। अपने ठीक समय पर पूजा–पाठ करे। साधु सन्त अतिथि अभ्यागत की सेवा करे। सत् की कमाई सत् का आचरण व्यवहार रखे। प्रभु की आशीर्वाद धारा बनकर आप पर बरसेगी, कबीर भक्त की तरह। सबको अपनी ओर आकर्षित करे। मेरा तो यही परामर्श है गृहस्थ में पवित्र जीवन बसर करो किसी के मोहताज न बनो। कमाओ स्वयं खाओ औरों को खिलाओ। जब तक मुक्ति की तीव्र इच्छा और तत्त्व का ज्ञान नहीं प्राप्त होता गृहस्थ धाम को सुधारो। गृहस्थ धाम सब से श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ है। मनुष्य का धर्म इसी से स्थित रहता है। विरक्त बनना सबका काम नहीं, न सबको अधिकार है। बिना अधिकार के आडम्बना होती है, दुःखी होता है। मत समझना इस मार्ग पर लगे हुए बिना वैराग्य और प्रभु कृपा के अन्दर से अच्छे होंगे, हरगिज नहीं।

२५. गृहस्थी का भक्ति का रूप

आदरणीय श्री भक्त जी !

कल रात आपका प्रेम–पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

आपकी श्रद्धा तो बहुत है परन्तु इसमें अज्ञान भी कम नहीं। पांव धोकर चरणामृत की इच्छा करना वैदिक धर्म के विरुद्ध है। हम तो वैदिक धर्म को माननेवाले हैं इसलिए इस भ्रम को दिल से निकाल देना चाहिए। लोग जो धूप दीप जगाते और आरती उतारते हैं यह सब पूजा बाहरी होती है। इससे आत्म–जीवन–ज्योति नहीं जगती। ऊंचे से ऊंचा दर्जा एक ही शक्ति को दिया जा सकता है। जब नाशवान् को यह दर्जा दिया गया तो परमात्मा को नहीं दिया जा सकेगा इसलिए अपने लक्ष्य में अपना इष्टदेव, उपास्यदेव सबसे श्रेष्ठतम एक प्रभु ही सम्मुख रहना चाहिए। भक्ति में पूजा केवल प्रभु की करनी चाहिए। सब बाकी के लिए यथायोग्य आदर–सत्कार ही श्रद्धा है, हां सब पर अपनी भावना का प्रभाव पड़ता है। मैं नहीं जानता कि ऐसी भावना किसकी दिखावे की है किसकी सच्ची। यदि संच्ची भावना हो तो हो सकता है कि उनको कोई आध्यात्मिक लाभ पहुंचे और दिखावे की है तो अपने रास्ते को बन्द करना है। मगर मैंने अपने लिए कभी ऐसी इच्छा नहीं की और न ही इसमें अपने लिए कोई लाभ समझता हूं। श्रद्धा तो वह चीज है जो एक आध्यात्मिक पथ पर चलनेवाले के लिए आदि और अन्त की सहायक है। मगर श्रद्धा उसी में हो सकती है

जो सत्यस्वरूप की प्राप्ति का इच्छुक हो। सांसारिक व्यावहारिक आदमियों की श्रद्धा केवल एक शिष्टाचार और मर्यादा की होती है।

यह ठीक है कि आप में व्यावहारिक बुद्धि नहीं इसलिए आप धन नहीं कमा सकते। विद्या का पुजारी ही विद्वान् बन सकता है, बल का पुजारी बलवान् बनेगा—धन का पुजारी जब तक न हो तब तक धनवान् नहीं बन सकता और यह विद्या, बल, धन, श्रेष्ठ यज्ञ का साधन बन जाते हैं जब दिल में भाव यह हो कि मेरी उपार्जन की हुई विद्या बल और धन से दूसरों को सुख पहंचे और संसार का कल्याण हो, धन बुरी चीज नहीं, इससे ही धर्म के सब कार्य सफल हो सकते हैं, इसके बिना संसार का व्यवहार परमार्थ दोनों नहीं चल सकते। जब तक आप को वैराग्य न हो तब तक तो माता–पिता, स्त्री और परिवार की सेवा करनी ही पड़ेगी और सेवा के लिए धन उपार्जन करना पड़ेगा। जितनी धन में कमी होगी उतनी आप को अशान्ति और दुःख होगा।

वह भक्ति क्या जिसमें सहनशक्ति नहीं ! वह भक्ति क्या जिसमें प्रभुभक्त बनने की इच्छा नहीं, जिसकी बुनियाद जिसे धैर्य और सहन–शक्ति कहा गया है मौजूद नहीं। बिना तप के कोई भी भक्त या महान् पुरुष संसार

में सफल नहीं हुआ। यदि तुम जैसी इच्छाएं रखते हो इनमें जल्दबाजी न करो और तप त्याग से जीवन बसर करो तो अपने माता–पिता और परिवार की सेवा भी कर सकोगे और पर्याप्त धन उनकी सेवा के लिए प्राप्त कर सकोगे। नहीं तो इस चंचल स्वभाव से अपना जीवन व्यर्थ, उनका जीवन दुःखित बनाओगे। जिस युक्ति से और जिस सुनीति से अपनी और उनकी जीवन यात्रा सुखी बना सको वही बड़ी भक्ति है। ऐसा करने से आपका मार्ग अपने–आप खुल जावेगा। वरना यह तो कभी उम्मीद ही न रखो कि कोई दूसरा तुम्हारे मार्ग को खोल सकेगा, सब मार्गों में ईश्वरीय और प्रकृति के नियम काम करते हैं। इन नियमों के भंग करने से न प्रकृति रियायत करती है और न ही ईश्वर मदद करता है। मेरा अपना यही मत है कि जब तक वैराग्य नहीं होगा तब तक अपने ऊपर की जिम्मेवारियों को खुशदिल होकर और सहन–शक्ति से धर्मानुकूल पूरा निभाओ।

२६. गृहस्थ युक्त सुनीति से व्रत करें

प्रिय भक्तजी,

ज्यों–ज्यों प्रभु आपको अधिकारी समझते जावेंगे त्यों–त्यों आपकी जिम्मेवारियों को आपके सिर से हटाते जाएंगे। यही सब से बड़ा व्रत है। जो व्रत साधक भक्त

लोग एकान्तवास से और मौन रूप से करते हैं इनसे परमेश्वर नहीं मिल जाता और न ही इनकी आत्म–उन्नति होती है। वह तो प्रायः एक दिमागी विश्राम, शरीर की सेहत बन जाती है।

आत्म–उन्नति का सम्बन्ध ज्ञान से है। ज्ञान वह है जो हमारी वृत्तियों की काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से रक्षा करे अथवा इनको वश में करके फिर साक्षात् कराए।

व्रत करके भी अगर यह चीजें वैसी की वैसी रहीं तो क्या लाभ ? तुम कहोगे मुझ में लोभ नहीं, मैं कहूंगा तुम आलसी हो। तुम कहोगे मुझ में काम नहीं, मैं कहूंगा तुम जितेन्द्रिय नहीं। तुम कहोगे मुझ में मोह नहीं, मैं कहूंगाँ यह तुम्हारी कठोरता है जो तुम जिम्मेवारियों से बचना चाहते हो। जब तक मनुष्य के अन्दर क्रोध, असहन–शक्ति, अधीरता, जल्दबाजी और अपनी प्रतिष्ठा का मोह है तब तक समझलो इसमें सारे शत्रु गुप्त रूप से विराजते हैं।

यह मैं जानता हूं कि यदि प्रभु यकदम तुम्हारे माता–पिता और स्त्री का वियोग कर दें तो तुम्हें बजाए दुःख के खुशी होगी कि तुम्हारा छुटकारा होगया; पर यह नहीं कहा जा सकता कि तुम्हें इसलिए खुशी हुई कि तुम उनकी सेवा करने के बोझ से छूट गए क्योंकि तुम उनकी सेवा के लिए धन नहीं कमा सकते या तुमको परमेश्वर की प्राप्ति के लिए खुला रास्ता मिल गया। इसका सही अनुमान उसी समय लग सकेगा।

भगवान् का भक्त इतना बड़ा पुरुषार्थी होता है कि एक क्षण भी निकम्मा नहीं बैठ सकता। इसे निकम्मा होने में बड़ी व्याकुलता होती है मगर मैं तुम्हें देखता हूं जितना समय तुम घर से बाहर गुजारते हो उतना तुम अधिक खुश होते हो। इसमें नाराजगी न मानना मैंने ऐसा महसूस किया है।

लालच तुम में नहीं है, धन जमा करने की तुम्हें इच्छा नहीं। इसलिए तुम धर्मानुकूल कमाते हुए अपने प्रारब्ध में सन्तोष रखो। अपना प्रोग्राम बनालो जितना समय तुम रोजाना जप, स्वाध्याय, हवन और मौन करना चाहो और बाकी समय अपने व्यवहार में लगाओ जिससे तुम अपने परिवार का ठीक पालन कर सको। घर में लड़ाई–झगड़ा होता रहे, तुम्हें कुछ कहते रहें, बस बहरे और गूंगे बने रहो। ऐसी सहनशीलता से तुम्हारा मार्ग अपने–आप व्यवहार करते खुल जावेगा। अगर तुम माता–पिता, स्त्री को छोड़कर एकान्त मौन कर लो और जप–पूजा में लग जाओ, तो तुम्हारे अन्दर क्रोध आदि के संस्कार तो जीते ही रहेंगे और माता–पिता का शाप भी तुम्हारे रास्ते में रुकावट बना रहेगा इसलिए बेहतर यही है कि तुम मुक्ति और सुनीति से अपनी जीवन–यात्रा निभाओ, न दिल में कुढ़ते रहो न दुःखते रहो।

२७. पितृ-पूजा व्रत का अंग

प्रिय भक्तजी नमस्ते।

१. प्रेम पत्र मिला। मैं २४—११—५० से व्रत में हूं। पहला मास चान्द्रायण किया, फिर ऐसे अदर्शन मौन २१—३—५१ तक रहेगा, अभी ढाई मास और रहते हैं २१—३ से शायद कुटिया पर यज्ञ होगा।

२. आप बेशक दो मास मौन व्रत कर लेंवे। खड्डी का काम दो रुपया रोजाना पर जरूर कर लेंवे। आठ घण्टे ठीक हैं। उसी की मेहरबानी है, आपका काम बन जावेगा।

३. प्राणायाम केवल २१ तक ही करें अधिक नहीं।

४. जप जितना चाहें करें। बहुत जोर शरीर पर न देंवे।

५. खुराक में एक पाव अन्न खाया करें अधिक भूख के लिए गाजरें खा लिया करें।

६. मां—बाप के पैरों को रात को जरूर दबाया करें। यह भी बड़ा भजन है। आप केवल जप को ही भजन न समझा करें, सेवा बड़ी भक्ति है।

७. आप की रोटी आप की स्त्री जप में पकावे। तजुर्बा भी कर लेंवे। संकल्प दृढ़ हो तो स्त्री कैसे भी बनावे प्रभाव न होगा। आप खुद जाप में खावें। उसका बड़ा असर होगा।

८. मैं डाक्टर जी के गांव में उनकी कुटिया पर हूं, जहां वह आपको कहते थे। जवाब जल्दी दे रहा हूं। ओ३म्।

२८. व्रत सम्बन्धी उपदेश

प्रिय भक्त जी सप्रेम नमस्ते शुभाशीष।

१. व्रत शुरू कर दिया प्रभु कृपा से सफल हो।

२. सेवा भी करने का अवसर पा रहे हो प्रभु कृपा चाहिए।

३. कोई आज्ञा का भंग नहीं गाजर तो मैंने लिखी ही थीं—गाजर का हलवा बन गया तो अच्छा है। वह तो सामर्थ्य पर है। अगर बन सकता है तो हर्ज ही क्या है? ताजी गाजरें भी केवल गुड़ में पकाई जा सकती है। घी की सामर्थ्य न हो तो गाजरों की सब्जी बनाकर खा सकते हो। मतलब कि पेट पूर्ति भी हो जाए और अनाज का खर्च अधिक न हो।

४. यह तो आपकी हिम्मत पर है कि १६ गज जरूर पूरा करें पर शरीर थक जायेगा तो भजन में कामयागी न होगी।

५. दो प्रकार के भजन करने वाले होते हैं। एक शरीर को भजन के लिए मुख्य रखते हैं और एक काम को शरीर के लिए मुख्य रखते हैं तुम दोनों को मुख्य

बनाना चाहते हो, भजन भी मुख्य हो काम भी मुख्य हो, यह कैसे हो सकता है ? खामखा यह साबित करना कि मैं ईमानदार पूरा हूं। भोले ! शरीर को थकाओ नहीं। जब उसने मेहरबानी कर दी कि जितना काम तुमसे हो जरूरी नहीं कि १६ गज ही करो तो रकम दूंगा, प्रभु की प्रेरणा से उसने कहा। उसे भी तो लाभ मिलेगा। जब तुम्हारा शरीर न थके तब भजन सफल होगा। मुख्य तो भजन तुम्हारा बना हुआ है। शरीर के थक जाने से न भजन पूरा बनेगा, न काम पूरा हो सकेगा, खुराक भी अधिक से अधिक शरीर मांगेगा।

हां, वह मालिक नाराज होता और काम मांगता तो फिर तुम्हारी लाचारी थी। इसलिए तो तुमने अपना काम नहीं किया, फिर लाभ क्यों उठाओ।

६. शरीर को अधिक थकान, शरीर की निष्क्रियता, दिमाग में गर्मी, बुरे विचार, कुसंग दोष, खुराक के गिरिष्ट होने अपच्च, पूर्व जन्म, जन्म जन्मान्तर के दोष संस्कार वर्तमान काल में विषय काम में लोलुप्ता इन कारणों से स्वप्न दोष हुआ करता है।

७. कोई भी कारण इनमें से होता है। फिर जब कोई आकार सामने नहीं आया तो समझो शरीर की अधिक थकान या पूर्व जन्म संस्कार दोष हो सकता है।

८. इससे घबराओ नहीं यदि स्वप्न दोष के पश्चात् तुम्हें कोई निर्बलता या आलस्य, शरीर में थकावट मालूम नहीं होती तो समझो कि पूर्व जन्मों की कामवासनाओं का प्रबल जमाव है। यह तब जायेगा जब समाधि अवस्था आयेगी। तब भी कभी–कभी दोष हो जायेगा मगर बहुत काल के बाद, अब की तरह नहीं।

परमात्मा देव से प्रार्थना दुर्वासनाओं से छुटकारे के लिए रोजाना जारी रखो।

आंखों के सामने अंधेरे में भी रोशनी बनी रहना खुशकिस्मती है। उसी प्रकाश में ही ध्यान जमाये रखना चाहिए। ओ३म् का जाप होता रहता है। गायत्री नहीं होती तो हर्ज नहीं।

६. आंखों में रोशनी का रहना प्राणायाम का फल है।

१०. प्राणायाम जब १।। मिनट का है तो दो बार भी काफी है। शरीर का इतना बहुत ख्याल रखो कि कभी खुश्की न होने पावे। इतना काम लो जो सारी आयु काम दे सके, जल्दी से बहुत काम लेकर शरीर को मेरी तरह से थका न दो। अब तो तुम्हें समझ नहीं, जब ज्ञान अनुभव होगा तब खुशी से काम ज्यादा करना चाहोगे मगर शरीर साथ न देगा, इसलिए उतावली मत करो। यह प्रकाश जो मिल रहा है यही आगे ले जायेगा।

११. प्राणायाम हरगिज न बढ़ाना। गायत्री का जाप थोड़ा बहुत करना चाहिए। कम हो तो ओ३म् का जाप बढ़ा लो। प्राणायाम का समय मत बढ़ाओ।

१२. सामवेद आरम्भ कर रखा है तो ठीक है मगर वह भी हिरस मत करना। शरीर तुम्हारा कुछ नहीं दिल बड़ा है। सब काम एकदम करना चाहते हो। असल चीज तो होती है आत्म–निरीक्षण। मनोनिग्रह–वती विचारों की देख रेख–आध्यात्मिक, आन्तरिक उन्नति के साधन तो यही हैं। हां, अगर दोनों थोड़े और विचार अधिक से अधिक किये जावें तो आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं, पर अब कर रहे हो तो करते जाओ। मगर अपनी वृत्तियों की देखरेख में समय जरूर दो। उसमें कोई ज़ोर नहीं लगता, मेहनत नहीं पड़ती, इससे ध्यान–विचार समाधि बढ़ती है।

१३. मेहनत करने वाले को नमक जरूर खाना चाहिए ताकि हज्म कर सके। हां, केवल व्रत होता तो बिना नमक ठीक था। यदि बिना नमक कष्ट अनुभव नहीं करते तो फिर कोई हर्ज नहीं, नमक आगे पीछे चाट लिया करो।

२६. अध्यात्म पुरुषार्थ शनैः-शनैः बढ़ावे शीर्ष आसन की विधि

मेरे प्यारे नेक दिल अजीज–आनन्द से रहो आशीर्वाद।

आपका प्रेम पत्र प्राप्त हुआ—धन्यवाद !

१. हालात पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई प्रभु का प्रकाश और नाम स्मरण जब दिन हो या रात जिस समय चाहे सारे शरीर में होता रहता है और फिर क्या चाहिए। इससे मार्ग और क्या मिले ? बस इसी को परिपक्व बनाने का अभ्यास बढ़ाइये। जो अब क्षणिक होता है उसे मिनटों तक ले जाइये—यदि मिनटों का है तो बढ़ाते—बढ़ाते घण्टों तक ले जाइये। ऐसे पहरों तक और ज्यों—ज्यों वैराग्य बढ़ेगा त्यों—त्यों सुरति उधर ही रहेगी। बढ़ाने का अभ्यास कीजिए जो आप को प्रभु प्रसाद प्राप्त है।

२. शीर्ष—आसन करना बहुत ही मुफीद है। मगर धीरे—धीरे बढ़ाना, एकदम नहीं। एक—एक सैकिण्ड प्रतिदिन बढ़ाना अच्छा होता है। उनको यह आसन हानिकारक होगा जिनके कान में, आंख में, छाती में पीड़ा होती हो, उनको नहीं करना चाहिए। इस आसन में श्वास नाक से लेना चाहिए। कर चुकने के बाद फोरन खड़ा नहीं हो जाना चाहिए। बल्कि शव आसन से लेट जाना चाहिए। चित्त जैसे मुर्दा लेटा होता है। कुछ देर ऐसा लेटने के बाद उठना और खड़ा होना चाहिए। इस आसन से रूहानी और जिसमानी दोनों लाभ मिलते हैं। योग—युक्ति में पढ़ लीजिए।

३. योग विभूति को योग–दर्शन में या योग–युक्ति में पढ़ लीजिए। विस्तार से मालूम हो जाएगा।

३०. भर्गः प्राप्ति का रूप और फल

मेरे प्यारे नेकदिल अजीज आनन्दित रहो, आशीर्वाद!

आपका प्रेम–पत्र २२–७–४३ का लिखा प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

१. और क्या चाहिए ? सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग–चारों युगों के महान् श्रेष्ठ महात्माओं, ऋषि मुनियों के दर्शन आपको हो जाते हैं। और होगये।

२. जहां प्रकाश ही प्रकाश नज़र आने लगे और कुछ भी न दिखाई दे, बेटा ! यही तो असली चीज है। बस अब कोशिश यह करनी चाहिए कि उस प्रकाश को त्रिकुटी में ऐसा टिकाया जावे कि सब वृत्तियां इसी में लीन हो जावें, अपनी सुध–बुध बिसार कर एक ज्योति ही ज्योति अन्दर बाहर फैली रहे। जैसे–

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा–
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

सूर्य की ज्योति ऐसी फैले कि सूर्य अपनी ज्योति से ऐसा ढक जाता है कि सूर्य दिखाई ही नहीं देता। ज्योति ही ज्योति प्रकाश सर्वत्र दिखाई देता है। अगर यह अवस्था बन जावे जो मनुष्य भी आप की ओर देखेगा

आंख से आंख नहीं मिला सकेगा। दूसरा पतित पापी भी आपके दर्शन को आवेगा तो उसके पाप दग्ध हो जावेंगे। अगर पापी आप पर प्रहार करने आवेगा तो लज्जित हो जावेगा। इसका अभ्यास बनाइए। प्रकाश को टिकाना २४ घण्टे का अमल—गोया **'भर्गो देवस्य धीमहि'**, भर्गः को धारण करना है जो चीज पढ़ी न हो, न सुनी हो, न देखी हो उसके सम्बन्ध में ज्ञान होना यह प्रभु की कृपा योग विभूति की प्राप्ति है। परमेश्वर करे आप दिन—दुगुनी, रात चौगुनी तरक्की करें। सम्पूर्ण परिवार को आशीर्वाद !

३१. वैराग्य का सही रूप-संकट काल का यज्ञ

मेरे प्यारे अजीज—आनन्द रहो, आशीर्वाद !

आपका प्रेम—पत्र मिला, हालात पढ़े। बड़ी प्रसन्नता हुई। परमात्मा देव आप को दिन—ब—दिन आत्मिक उन्नति के रूप देते रहते हैं।

बेटा ! वैराग्य घर—बार पुत्र, परिवार के त्याग का नाम नहीं है। जंगल में एकान्तवास का नाम नहीं है। विषयों में आसक्ति न हो, परिवार में आसक्त न हो, उनमें रहते हुए ठगा न जा सके, प्रकृति माया और परमेश्वर में भेद मालूम रहे, माया से परमेश्वर ज्यादा प्यारा लगे—यही वैराग्य है।

परिवार में रहकर सच्चाई, प्रेम का बर्ताव हो। इसी

संघर्ष में रहकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को वश में करते रहने से होता है। विरक्त बनकर कैसे आजमाइश हो सकेगी—जब व्यवहार ही नहीं तो सच, प्रेम, झूठ, क्रोध, दोष का कैसे इमतिहान होगा।

यह गलत है—जैसे धागे में मनके पिरोये हुए हैं ऐसे भगवान् पिरोये हुए हैं। यह कल्पना है। यह ऋषियों का जवाब नहीं हो सकता। धागे मनके में नहीं, मनका धागे में नहीं, प्रभु तो ओत–प्रोत है न केवल ओत न केवल प्रोत। फूल में सुगन्धि है ऐसे प्रभु हैं। जैसे आकाश सब में है, सबके अन्दर है, सब के बाहर भी है, सब में है। और सब उस (आकाश) में हैं और न्यारे के न्यारे भी हैं। सात ऋषि तो रहते हैं अगर आपने ऋषियों को देखा, तो वे कौन–कौन हैं ? क्या नाम थे ? अगर नाम का आपको पता लग गया हो तो दर्शन खरे वरना संकेत दर्शन हैं।

हां यह ठीक है, आहार, व्यवहार, विचार, आचार सबके पवित्र होने पर मन लगेगा, वरना नहीं। मगर सबका गुर (नियम) है—ज्ञान (विवेक)। ज्ञान के बिना ये चारों पवित्र कायम नहीं रह सकते।

घर हो या बाहर, हवन घी, सामग्री से—घी न हो सामग्री से, दोनों न हों दूध से, वह भी न हो अन्न से, समिधा से, वह भी न हो, तो पानी से, पानी से पानी में,

पानी भी न हो तो मन से, मन्त्र पाठ श्रद्धा से किया जावे परन्तु बिना वजह ऐसे कर लेना पाप है। परमेश्वर अन्तर्यामी है। वह हमारे हृदय की गति को जानता और समझता है और देखता भी है। यज्ञरहस्य में विस्तार से लिखा है। आपका पत्र बहुत सुन्दर है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। नाराजगी हरगिज नहीं, स्वामी जी को नमस्ते यहां यज्ञ हो रहा है १८–६–४३ को पूर्णाहूति यजुर्वेद की है।

३२. आत्मा का भोजन

आदरणीय यज्ञ व धर्म–प्रेमियो ! आज माघ मास की संक्रान्ति है यह मास बड़ा सुन्दर और हितकारी ध्यानियों के लिए और दानियों के लिए भी। आज यज्ञ की पूर्णाहुति है। भाग्यशाली ही यज्ञ रचाते हैं। तप, दान से शोभा पाते हैं। परमात्मा इन्हीं का जन्म सफल करेंगे।

यज्ञ पहले प्रवृत्ति और बाद में निवृत्ति मार्ग की शिक्षा देता है। मनुष्य का लक्ष्य निवृत्ति है। यदि मोह प्रवृत्ति में रह गया तो यज्ञ भी बंधन बन जाता है।

मनुष्य जितना मोह बढ़ाता है उतनी जिम्मेवारी मोल लेता है जितनी जिम्मेवारी उठाता है उतना वह बन्धन में जकड़ा जाता है। चाहे वह मोह धन का, चाहे जन का, चाहे मान का हो। धन का मोह अन्याय करायेगा, जन का मोह कंजूस बनाएगा। मान का मोह बे–आराम करेगा।

मनुष्य की आत्मा का भोजन यश है। यश के साधन चार हैं—१) अन्न, २) धन, ३) बल, ४) ज्ञान। अन्न—धन अर्पण करने से संसार के प्राणी यश करेंगे। यह बाहर की चीज है। बल और ज्ञान अन्दर की चीजें हैं। दोनों प्रभु के अर्पण हो जाएं तो प्रभु यश करेंगे। जब प्रभु जैसे महान् ऐश्वर्यवान् शक्तिशाली यश करें तो संसार के लोगों का यश हेच (निकृष्ट) प्रतीत होता है। तब अभिमान हरगिज नहीं आता। यदि बल और ज्ञान अर्पण न हो और अन्न, धन अर्पण हो तो उस यश से अवश्य अभिमान उपजेगा जो गिरा देगा।

सबसे कीमती और रक्षा के योग्य वह वस्तु है जो जाकर वापिस न आये। संसार के सब पदार्थ जाकर वापिस आजाते हैं। परन्तु एक **समय या काल** है जो जाकर वापिस नहीं लौटता। इस समय की कद्र और रक्षा करनेवाला मनुष्य ही सफल और सिद्ध जीवन बनता है।

प्रभु सबको प्राप्त है भिन्न—भिन्न रूपों में यदि उस रूप में समझ आजाये कि मुझ में प्रभु किस रूप में हैं तो मनुष्य आत्मा से सदा जागता रहे। प्रभु मुक्त जीवों को तो दर्शन रूप में प्राप्त हैं और बुद्ध जीवों में अपने दिव्य गुणों से।

कोई न कोई दिव्य गुण, दिव्य शक्ति या दिव्य

शक्ति के साधन प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होते ही हैं परन्तु साधारण मनुष्य उससे बे–खबर रहता है। इसलिए अपने उस गुण की रक्षा नहीं कर सकता। ओं शम्।

३३. उपदेश अखण्ड पाठ

पूज्य माताओ ! आप कितनी भाग्यवती हैं कि आप पवित्र वेद के अखण्ड पाठ से अपने कानों व वाणियों को पवित्र कर रही हैं। जय हो–जय हो–यतिवर महर्षि दयानन्द की जय हो, जिसके प्रताप से आप को प्रभु की निज पवित्र वाणी वेद के श्रवण और पठन का सुअवसर प्राप्त हो रहा है। ऐसे कलिकाल में जहां संसार में महान् भ्रष्टाचार, अत्याचार और फैशनपरस्ती, ऐशपरस्ती फैल रही है वहां आपके हृदय की भावनाएं सात्त्विक शुद्ध हो रही हैं। मेरी ऐसी विशाल माताओं को नमस्कार, बारम्बार नमस्कार।

माताओ ! वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है इसका पढ़ना–पढ़ाना सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आज आप परम धर्म की प्राप्ति के लिए वेदपाठ कर रही हैं या वेद की वाणी को पढ़ और सुन रही हैं। महर्षि की एक बात याद रखिए। वेद का पढ़ना शब्दमात्र पढ़ना भी उत्तम है। वेद के अर्थ अनुसार आचरण करना तो सबसे उत्तम और श्रेष्ठतम है। और यही परम धर्म जो

सच्चे दिल से प्रेम–भाव से उसका आचरण करता है और प्रभु की शरण में जाता है, प्रभुदेव स्वयं उस भक्त शरणागत को अपनी निज दया से, पापों से हटाकर, पापों से पृथक् करके सुपथ, सुमार्ग पर लगाकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति की सामर्थ्य प्रदान करते हैं। यह पवित्र वेद का सच्चा सत्संग भी किस्मतवालों को ही नसीब होता है। जिस स्थान पर ऐसे सत्संग हुआ करते हैं वह स्थान भी पवित्र हो जाता है। भूमि भी भाग्यशाली होती है। जो मनुष्य ऐसे सत्संग की आयोजना करता और सत्संग लगवाता है वह भी प्रभु के आशीर्वाद का पात्र बनता है, लोकहित करता और यश पाता है।

जो ऐसे सत्संगों में **सेवा-भाव** से सेवा करता है वह तो अहंकार जैसे महान् शत्रु को जीत लेता है और शान्ति प्राप्त करता है। भगवान् करे ऐसी सद्बुद्धि हम सब को सदा प्राप्त होती रहे। ओ३म् शम्।

३४. दो कहानियां

परमेश्वर जिसे अपनी ओर लगाना चाहते हैं उसके उपदेशार्थ ज्ञान–वैराग्य स्वयं उत्पन्न करते हैं और गिरावट आने पर किस प्रकार रक्षा और उत्थान कर देते हैं।

ओं असृग्र देववीतये वाजयन्तो रथा इव।। साम. १८१२

मुसलमानों में एक ख्यात है कि एक बादशाह को

स्वप्न में ख्वाज़ा खिज़र ने दर्शन दिये और कहा तुमने क्या मख़ौल बनाया। तुम बादशाही भी करना चाहते हो और खुदा को भी मिलना चाहते हो। **"ईं ख्याल अस्त ओ मुहाल अस्त ओ जनून"** दीन और दुनिया दोनों एक साथ कैसे मिल सकती है ? बादशाह था खुदापरस्त (ईश्वर भक्त) एकदम चौंका। चुपके से राजपाट घर–बार छोड़कर चल दिया, मक्का में पहुंच गया। वहां मक्का में इबादत (भक्ति) भी करता और अपनी रोटी के लिए लकड़हारा बनकर लकड़ियों का गट्ठा सिर पर लाता और यूं आवाज़ लगाता **"पाक लकड़ियों को लेकर कोई पाक रोटी दे सकता हो तो यह लकड़ियां ले लेवे।"** बस इन्हीं लकड़ियों द्वारा वह अपना पेट पालता। केवल पेट की भूखनिवृत्ति–मात्र ही रोटी लेता। बहुत साल इसी तरह बीते। वह शांतचित्त बेलाग–लपट भगवद् भजन करता रहा। पीछें से उसके पुत्र और रानी को पता लगा कि बादशाह मक्का में है। वे मक्का पहुंचे, उसे लकड़हारा के रूप में पाया। पुत्र सामने जा खड़ा हुआ। अदब आदाब बजा लाया (नमस्कार की)। लकड़हारा बादशाह के मुहब्बत के संस्कार उमड़ पड़े। मगर स्त्री की ओर ध्यान न गया। प्रेम के संस्कार जगने पर अन्दर से आवाज आई–"तुम तो मक्कार निकले, कहते थे मेरा

अब सिर्फ खुदा ही खुदा है उसके सिवाय कोई महबूब (सखा), माबूद (उपास्य देव) नहीं है। अब पुत्र को देखकर वह इकरार और खुदा का प्यार कहां गुम होगये।" फकीर राजा को होश आगई कहा आहा ! सचमुच मैं तो मक्कार ही ठहरा। कहां खुदा पाक और कहां मनुष्य फानी (मरणधर्मा)। खुदा के दरबार में उसी दिन अन्दर ही अन्दर प्रार्थना की कि "या खुदा अब तो इसका एक ही इलाज है कि या तो तू मुझे उठा ले या इस लड़के को जहान से उठा ले। तो दैवयोग से लड़का उसी दम मर गया। परन्तु लकड़हारा बादशाह के जूं तक न रेंगी। लेशमात्र भी दुःख न हुआ। शांतचित्त बना रहा, खुदा की याद में लग गया।

अपने में अर्पित भक्त के सब काम मोह आदि विकार नष्ट करके स्वयं प्रकाशित होता है, अर्थात् उसमें परमात्मा का दर्शन होता है।

दूसरी कथा इस प्रकार है कि एक मुसलमान फकीर जा रहा था। किसी पहाड़ी की ऊंचाई पर एक खूबसूरत देवी बैठी थी। फकीर की देवी पर नजर पड़ी तो उसे ऊपर जाने का खिंचाव होगया। देवी ने समझा कि कोई पागल मालूम होता है। जब और करीब पहुंचा तो उसने

समझा कि कोई आलम (ज्ञानी) है। जब और आगे गया तो समझा कि यह कोई आरिफ (ब्रह्मज्ञानी) होगा। जब बिल्कुल उसके सामने पास आ खड़ा हुआ तो उस देवी ने कहा 'हे शख्स मैंने जो समझा था वह सब गलत निकला। न तो तू पागल है, न आलम है, न आरिफ है। फकीर ने पूछा—कैसे ? तब देवी ने कहा—जब तू मस्तानी चाल से आ रहा था तो मैं समझी तू पागल है। जब आगे चलकर बजू (हाथ—पांव धोना) करने लगा तो मैं समझी कि पागल नहीं, यह कोई आलम मालूम होता है। जब तुझे तस्बी फेरते देखा तो समझी कोई आरिफ है। जब तू मेरे पास आ पहुंचा तो मैंने समझ लिया कि तू पागल नहीं, अगर पागल होता तो बजू क्यों करता। जब मेरी तरफ देखा तो मैं समझी कि आलम भी नहीं है। आलम होता तो मेरी तरफ क्यों देखता।

जब मेरे सामने आ खड़ा हुआ तो समझी तस्बी हाथ में लिए हुए भी आरिफ नहीं यदि आरिफ होता तो मुझ में खुदा की सूरत देखता क्यों एक देवी का रूप खूबसूरत समझता ?

इससे उस मुसलमान फकीर की आंखें खुल गईं और उसे ज्ञान होगया।

३५. समष्टि व व्यष्टि अखण्ड यज्ञ

आदरणीय महानुभावो व पूज्य माताओ !

आज का समय बड़ा सुन्दर और सुहावना है। कहूंगा मैं थोड़ा ही अभी–अभी जो वेद का भजन हुआ आस्तिकों के लिए है, जो धर्म और ईश्वर का सही–सही ज्ञान कराता है वह वेद है। हमारे जीवन का सार क्या है ? मनुष्य की विशेषता, वह उसके जीवन से है। वेद को सब नहीं जानते, सब नहीं पढ़ते, सब नहीं समझते, थोड़े ही लोग वेद आज्ञा का पालन करते हैं।

परमेश्वर संसार में यज्ञ कर रहा है। वेद के द्वारा कैसे यज्ञ किया जाए उसके लिए नमूना देते हैं। अग्नि के द्वारा जो होम किया जाता है वह यज्ञ है। परमेश्वर के यज्ञ का नाम अखण्ड यज्ञ है। हम अपने ऊपर समझ सकते हैं। शरीर में भी अखण्ड यज्ञ हो रहा है। प्राण अखण्ड यज्ञ कर रहा है। प्राण २४ घण्टे चलता है। जब यह बन्द हो जाएगा तो तेरा सबकुछ बदल जाएगा। अखण्ड यज्ञ वह है जिससे कभी कमी न हो। हजारों पैदा होते हैं, हजारों मरते हैं, पर इसमें कोई कमी नहीं आती। समुद्र भी कभी कम नहीं होता। हम अखण्ड यज्ञ करें, तो हम अमर हो जाएंगे, हम अल्पज्ञ हैं, हाथ, आंख, कान इत्यादि का मूल्य नहीं जानते। परमेश्वर हमें प्राप्त है पर

उसका ज्ञान नहीं। उसके ज्ञान के लिए वेद है, वेद ही है जो मानव को पथ दिखाकर मानवता की ओर ले जाता है।

जैसे यज्ञ में चन्दन की समिधा डाली हुई खुशबू फैलाती है वैसे ही जिन्होंने अपने को प्रभु की अग्नि में डाल दिया वे महान् बन गए। यज्ञ कितनी उत्तम चीज है। अपने जीवन के अन्दर कभी धन का वियोग न हो, मान की हानि न हो, यह अखण्ड यज्ञ का फल है। जो आदमी सामर्थ्यवान् नहीं हैं वे केवल वेद का पाठ करें। यदि मनुष्य निःस्वार्थ–भाव से अखण्ड यज्ञ करे तो अगले जन्म में विद्वान् बनेगा। जिसकी भावना पूर्ण है, फल भी पूर्ण मिलेगा।

मैं चाहता हूं सब यज्ञ करें। यज्ञ और वेद के प्रचार से संसार का कल्याण है। यज्ञ करना कराना बड़ा सत्संग है। वेद का सुनना भी पुण्य है। पहले शब्द में रस आए फिर अर्थ में रस आए। जीवन को सफल बनाने के चार साधन हैं–

१. योग द्वारा ईश्वर के दर्शन।

२. वेदों के प्रकाण्ड पण्डित बनें।

३. जिसके पास धन हो १०० यज्ञ यजुर्वेद के करे।

४. यदि सम्पत्ति नहीं तो १०० बार पाठ सामवेद का करे।

जो पढ़ा हुआ नहीं तो एक करोड़ गायत्री जाप करे। यज्ञ जीवन में परिवर्तन लाता है। भगवान् करे यज्ञ करनेवालों को यह समझ आजाए।

३६. दुष्ट से उपेक्षा करो

आदरणीय गुणवन्त श्रीमन्त भक्त जी।

शुभम् सप्रेम नमस्ते।

आपका प्रेम–पत्र बहुत मुद्दत के बाद कल प्राप्त हुआ। धन्यवाद !

१. स्वभाव से जो दुर्वृत्ति के लोग होते हैं उनसे चाहे कितनी दया की जावे वे अपना स्वभाव दिखाये बिना नहीं रहते। इसलिए मूर्ख के संग से, बद्दयान्त और ४२० से सदा अलग रहना चाहिए। न उसका ग्रहण न उसका त्याग बल्कि उपेक्षावृत्ति से बर्तना चाहिए, तब शान्ति मिलती है वरना दुःख ही दुःख होता है।

२. सन्त.......का हाथ बटाते हो बहुत अच्छा करते हो।

३. पूर्णमासी का लंगर चलाते हो सत्संग करते हो, सो ठीक है। जो तुम्हें प्रभु प्रेरणा हुई तो फिर क्या ? अपना व्रत भी वहां ही खोल लेना। पूर्णमासी के दिन और

क्या करना है ? यज्ञ तो होगा ही, प्रार्थना द्वारा खुल जाएगा। जो यज्ञ पूर्णमासी का करते हो वही काफी है और कुछ अधिक जरूरत नहीं। गायत्री की एक माला भी अधिक से अधिक काफी है। ओ३म्।

३७. प्रभु पर भरोसा ही परम ओट है

प्रिय भक्तजी शुभम् आशीर्वाद।

हालात मुन्दरजाबाला सब ज्ञात हुए। भक्तशिरोमणि ! न यह पूर्वजन्म का कर्मफल है, न प्रभु रूठे हुए हैं। पिता अपने पुत्र को योग्य बनाने के लिए कितनी जुदाई सहता है और धनी पुत्र भी अकेला कितनी मेहनत करता है, तप करता है। सोना आग की भट्टी में कितनी बार डाला जाता है। यही हाल भगवान् अपने भक्त से करते हैं। यह कोई नई चीज नहीं है। सब भक्तों का हाल ऐसा ही हुआ। कुठाली से निकल रहे हो भक्त जी ! मुझे अपना पता है। प्रभुदेव ने किन–किन मुसीबतों में डाला और धीरे–धीरे उठाते निकालते–निकालते निश्चिन्त कर दिया। प्यारे ! भक्त दृढ़–संकल्प होता है। ईश्वर पर भरोसा रखता है जो इसके साथ गुजरती है वह समझता है, इसी में भलाई है। प्रभु मेरा है मैं प्रभु का हूं; आने दो जो मुसीबत आती है उसका खैरमुकद्दम करता है। मनुष्य की अपनी किस्मत, किसी का क्या कसूर। अकलमन्द बने तो

भक्ति के रूप में अपने को रंग ले। रब्ब बड़ा कारसाज है स्वयं ही मुहाफिज बनेगा। ओ३म् शम्।

३८. विपत्ति या वरदान

प्रिय भक्त जी सप्रेम नमस्ते।

प्यारे ! मैं भी लिखूं क्या ? ईश्वरभक्तों को ऐसी उलझनें आती हैं उनके तप को बलवान् बनाने के लिए उनकी धैर्य व सहन–शक्ति को कुन्दन बनाने के लिए। ईश्वर–भक्त सन्त तो सबके सब निर्धन गरीब ही हुए हैं और रहते थे, मगर उनको सन्तोष व शान्ति कमाल की थी, उनके सब कार्य परमात्मा खुद करता था, उन्होंने कभी चिन्ता न लगाई। एकमात्र वह प्रभु आश्रित बनकर रहते रहे। उनका काम या कर्त्तव्य कर्म करना कौड़ियों की आमदनी पर गुजारा करना और नाम दान नाम स्मरण करते रहना। बस यही उनकी सम्पत्ति और सहारा होती थी। आप क्यों घबराते हैं ? भक्तों के सब कार्य प्रभु स्वयं ही संवारता है। ओ३म् शम्।

३६. मानव कुछ बना, कुछ कर, कुछ कमा

आदरणीय महानुभावो !

ऐ मनुष्य ! प्रभुदेव ने तुझे कैसी सहायता प्रदान की है, जरा सोच किसी भी प्राणी का बाप, दादा, चाचा, ताया, मामा, नाना है। एक तू ही है जिसे यह विशेषता प्राप्त है।

तेरे बहिन, भाई, मित्र, रिश्तेदार, बाप, दादा, चाचा, चाची, नाना, नानी, नौकर–चाकर, महल, मकान, माड़ी, गाड़ी, मोटर, कुर्सी, मेज, गलीचे पर बैठने और रहने के लिए हासिल हैं। कैसी शान, मान और इज्जत से तू रहता है। फिर आश्चर्य यह कि तू चाहे अमीर हो या गरीब, धर्मात्मा हो या पापी, ब्राह्मण हो या शूद्र जब चाहे तू परमात्मा को बुला सकता है, बिना किसी सिफारिश के मिल सकता है और कह सकता है भगवान् आप मेरे पिता हो, बन्धु हो, सखा हो, मित्र हो।

'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे।। सामo ११७०

मैं तेरा हूं तू मेरा है। मेरा तो जन्म–सिद्ध अधिकार तुम्हें मिलने का है, दर्शन कर सकने का है। मैं तेरा सजातीय हूं। मैं पुत्र हूं तू मेरा पिता है, माता है, मैं शिष्य हूं तू मेरा गुरु है, रहनुमा और रहबर है। इसलिए ए मानव ! इस मानव–देह में–

१. अगर बना सकते हो तो कुछ बनालो ! क्या बना लो ? जीवन बनालो। किसका ? अपना जीवन।
२. अगर कर सकते हो तो कुछ करलो ! क्या कर लो ? प्रेम करलो। किससे ? प्रभु परमेश्वर से।
३. अगर कमा सकते हो–तो कुछ कमालो। क्या कमा

लो ? नेकी कमा लो—किससे ? प्रभु की प्रजा से।

अगर इस देह में न बनाया न किया और न कमाया तो पछताओगे और बन्दी बनाए जाओगे। प्रभु करे हम सचेत हो रहें और जन्म सफल करें।

४०. वानप्रस्थी को उपदेश

कल्याण मार्ग में प्रवेश करना या कल्याण मार्ग की दीक्षा लेनी।

कल्याण के तीन मार्ग हैं—ज्ञान, ध्यान, दान। प्रत्येक प्राणी के साथ पेट तो लगा ही हुआ है। उसका पालन ब्रह्मचारी तो पांव के बल पर करता है। भिक्षा करने के लिए पांव से चलकर जाता है जिसके पांव नहीं वह मोहताज है।

गृहस्थी हाथ की कमाई करके पेट पालन करता है। वानप्रस्थी वाणी द्वारा और संन्यासी बुद्धि द्वारा। अपने—अपने पेट की पालना करते हैं।

कल्याण और शान्ति तब मिलती है जब वासनाओं से शान्ति मिलती है। अनन्तः वासनाएं पूर्व जन्म जन्मान्तरों की पड़ी हैं। ब्रह्मचर्य व गृहस्थाश्रम काल में अनेक वासनाएं और अधिक नए कर्मों से उत्पन्न हुईं। अब वानप्रस्थ आश्रम में सब कार्य व्यवहार का त्याग करके प्रवेश किया तो नई वासनाओं को पैदा न होने दे।

पिछली वासनाओं को समाप्त करने का व्यवहार कार्य करना पड़ता है।

हम देखते हैं कि संसार में क्षुद्र जीव असंख्य हैं और वे सब विषैले होते हैं। उनको मारना—ऐसे ही दुष्ट क्षुद्र वृत्तियों, वासनाओं को नित्य मारते रहना—जैसे मनुष्य पांव तले चलते समय सैंकड़ों, हजारों क्षुद्र जन्तु जो हमारी दृष्टि से ओझल रहते हैं मर जाते हैं। ऐसे ही वानप्रस्थी अपने तप से हिंसक क्षुद्र वासनाओं को जो संचित पड़ी हैं, सामने नहीं आतीं, उन्हें कुचल दे। **तपः पुनातु पादयोः।**

जैसे सांप, बिच्छू और ऐसे देखने में आनेवाले विषैले दुष्ट जन्तु को मनुष्य हाथ में डंडा ले मारता है। ऐसे ही वासनाओं के जागने पर वानप्रस्थी अपने त्याग—भाव से निष्काम शुभ कर्मों को करने से मार देवे। फिर मुकाबला करनेवाले हिंसक जीव—शेर चीता बघियार आदि को मनुष्य बाण से मार देता है। ऐसे वानप्रस्थी वाणी को शुद्ध पवित्र और अहिंसक वाणी बनाकर सर्व संस्कारों को मिटा देवे। सत्य व्रत, प्रार्थना, स्तुति से और आसक्ति के संस्कारों को ध्यान में उपासना से समाप्त कर देवे। भ्रम, भ्रान्तियां अविद्या आदि संस्कारों को ज्ञान से दग्ध कर दे। मक्खी मच्छर आदि विषैले जन्तुओं को धुआं गैस से

दूर किया जाता है। ठीक इसी प्रकार प्राणायाम से इन वासनाओं को उड़ा दिया जाता है।

४१. अवगुणों की पहचान

१. धनवान् है परन्तु उसे खान–पान वस्त्र मकान में सुख नहीं है, क्या कारण ? समझलो कि वह कंजूस होगा।

२. विद्वान् है परन्तु उसे शान्ति नहीं तो विश्वास रख कि उसे अभिमान होगा, ईर्ष्या और घृणा भी साथ होगी।

३. भक्त है और अपने दुःखों की सदा शिकायत करता है तो समझलो कि उसे ईश्वर अपने इष्टदेव पर विश्वास नहीं होगा भले उसमें श्रद्धा हो मगर विश्वास की कमी अवश्य होगी।

४. एक कर्मठ है—बड़ी मेहनत पुरुषार्थ करता है। फिर भी असफल रहता है मान लो कि वह अहंकारी और हठी होगा, वह अपनी मनमानी करेगा साथियों से एक विचार न रहता होगा।

५. एक पहलवान है मगर अखाड़े से डरता है। वह दिल का कमजोर होगा उसे अपने ऊपर विश्वास न होगा—आत्मविश्वास की कमी डर का कारण है।

६. एक अभ्यासी साधक योगाभ्यासी ध्यान समाधि की

कोशिश करता है परन्तु सिद्धि प्राप्त नहीं होती तो समझो वह अनिष्ट चिन्तन करता होगा, विषयों में रुचि रखता होगा अभी उपरमता नहीं हुई।

७. एक बखतवाला धनी......हो जाए। कई स्कीमें सोचता बनाता है, सलाहें करता रहता है मगर अपनी स्कीम (योजना) में कामयाब नहीं होता, मान लो कि उसको अपना रुपया लगाने निकालने में दूसरों पर विश्वास नहीं जमता।

८. एक नेक मालिक पर उसके कर्मचारी खुश नहीं रहते—उसका कारण है वह किसी को शाबाशी नहीं देता होगा और वजन से अधिक काम लेता होगा। अपना रोब दिखाने के लिए नाराजगी भी प्रकट करता होगा।

९. दो ईमानदार दयानतदार हिस्सेदारों का आपस में इत्तिफाक (मेल) नहीं बनता, दोनों अपने–अपने को बड़ा समझते होंगे तभी अशान्ति रहती होगी। या एक सादा स्वभाव दूसरा चतुर होगा तभी एक दूसरे से सहमत न होते होंगे।

१०. एक साहूकार नेक हलीमउलतबा (नम्र स्वभाव) दानी भी है और बहुत कारोबार करता है। ग्राहक कर्मचारी छोटे–बड़े सब उससे खुश रहते हैं। मगर पैसे से

तंग रहता है उसका एकमात्र कारण है कि हिसाब—किताब का कच्चा—वसूली करने में आलसी होगा, कोई दे गया ले गया। आलस्य आरामतलब या मांगने में हतक समझता है तंगी का निशान है।

४२. वासना-विपाक

प्यारे धर्मप्रेमियो !

अनगिनत वासनाएं संस्कार मनुष्य में संचित पड़े हैं। उनमें से जिनका कर्म विपाक बन चुका है उसे तो अवश्य भोगना पड़ेगा परन्तु जिनका कर्म अभी विपाक नहीं बना उसको भोगने की बारी ही न दी जावे यही अकलमन्दी है, बुद्धिमत्ता है। इस जन्म में राग—द्वेष रहित होकर निष्काम कर्म करने से पूर्वसंचित कर्म संस्कार क्षीण हो जाते हैं।

बहुत पुण्य कर्म करने से, नया पाप न करने या कम करने से अगले जन्म के लिए जो भाग निश्चित होगा वह वर्तमान जन्म के पुण्य के लिहाज (अनुपात) से होगा तब भी पूर्वसंचित संस्कारों की बारी न आवेगी। जो इस जन्म में प्रधान रूप से उत्तम कर्म होगा वह इस जन्म के पापों को भी दबाए रखेगा।

मन्त्र जप और समाधि जो अत्यन्त श्रद्धा से सिद्ध की जावे उस से संचित क्लेश कर्म—वासनाएं नाश होंगी

दूसरा इस जन्म में ही उनका फल मिल जाता है।

ईश्वर देवता और ऋषि महानुभाव ब्रह्मनिष्ठ की आराधना सेवा से उनकी प्रसन्नता से इस जन्म में फल मिलता है। यह कैसा, जब सन्तान होश जोश वाली मां को अपना परमात्मा की तरह मालिक समझती है, भय रहता है, बुरे काम न करेगा आशीर्वाद मिलता है। जब अच्छे कर्म करके माता को प्रसन्न करता है उसके नाम को बढ़ाता है।

गुरु की ताड़ना शिष्य को पथभ्रष्ट नहीं होने देंती और संस्कार संमार्ग पर जमाए जाता है। (नोट) गुरुदेव योगिराज जी महाराज के अवल से बेपेन्दा का लोटा को पढ़कर बड़ा हंसा। इन शब्दों में प्यार ताड़ना प्रतीत हुई। इद्रियां जब जागती हैं तो विषयों की ओर भागती हैं। मन जब ज़ागता है तो इन्द्रियों का दमन हो जाता है। इन्द्रियों को लगाम लग जाती है।

जब बुद्धि जागती है तो मन इन्द्रियों को अपने आधीन करके चलता है।

जब अहंकार जागता है तो अपने अहम् पोजीशन का मान कराता है।

जब आत्मा जागती है तब कोई पाप इसके समीप नहीं फटक सकता।

जागृत आत्मा ही परमात्मा को साक्षात् कर सकती है। इसी आत्मा पर ही परमात्मा लट्टू होते हैं।

४३. नौ नकद न तेरह उधार

आदरणीय महानुभावो व पूज्यं माताओ ! ऐसे पवित्र यज्ञ में जहां प्रभु की अपनी निज और कल्याण वाणी सुनाई जा रही हो, वहां एक साधारण मनुष्य की वाणी किस काम की ? मगर चूंकि संसार के लोग परमेश्वर के बनाए पक्के पदार्थों को कच्चा समझते और अपने हाथ से बना और नमक, मिर्च लगा खाने में स्वाद मानने के आदी हो चुके हैं इसलिए वह प्रभु की सरल वाणी का भी मसाले से रस और स्वाद लेना चाहते हैं।

यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र आदेश देता है, सन्तान को उत्तम शिक्षा और प्रजा की रक्षा करो।

परमेश्वर की वाणी सत् है। सत् वह होता है जिसमें बनावट न हो, सीधा सादा सरल और हम सब हैं बनावटी आदमी; हमको सत्य कैसे प्यारा लगेगा ? आज ठाठ–बाट, शोभा शृंगार सजावट का जमाना है। जिसे वेदशास्त्र मर्यादा और सभ्यता की बात कहो वही मुंह चिढ़ावेगा। आज तो जरूरत है सबसे बड़ी समाज सुधार की।

समाज सुधार का मार्ग कम से कम भारत में मोक्ष मार्ग के सदृश अनेक कठिनाइयों से भरा पड़ा है। भारत

में समाज सुधार के मित्र थोड़े और समालोचक बहुत हैं।

हमारे देश में सबसे बड़ी चीज धर्म को ही माना जाता है। विद्वान् महात्माओं की बात छोड़ दीजिए साधारण घसियारा खेती करनेवाला मजदूर बोझा उठाने वाला भी धर्म का बड़ा ध्यान रखता है। उड़ीसा, बिहार, आसाम के जंगलों में रहनेवाली आदीवासी कौमें (जातियां) भी धर्म के नाम पर लुटती हैं। जो कर्म धर्म विरुद्ध बताया जाए, उसे करने को तैयार नहीं। पर खेद यह है कि अज्ञानवश हम धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल गए इसलिए धर्म द्वारा अपना कल्याण करने की बजाए प्रायः हानि उठाते रहते हैं, ठगे और लूटे जाते हैं।

वह भूल क्या है ? वह यह कि लोग धर्म को अधिकांश में, परलोक में लाभ पहुंचानेवाला कार्य मानते हैं। इस कारण इस लोक में प्रायः उनको कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। यह सब हमारे भ्रम का ही परिणाम है।

स्वामी रामतीर्थ का कथन है कि धार्मिक वाद—विवाद जो होते हैं और जितने झगड़े होते हैं वह नकद धर्म पर नहीं उधार धर्म पर होते हैं। नकद धर्म वह धर्म है जो मरने के बाद नहीं, मनुष्य के वर्तमान जीवन से सम्बन्ध रखता है। उधार धर्म अन्धविश्वास पर निर्भर है उधार धर्म कहने के लिए है नकद धर्म करने के लिए है।

धर्म के इस भाग पर जो नकद है सब के सब सहमत हैं जैसे कि सत्य बोलना, विद्या पढ़ना और उसे आचरण में लाना, स्वार्थ से रहित होना। दूसरे के धन आदि को देखकर अपना चित्त न बिगाड़ना। संसार के प्रलोभन और भय के जादू में आकर अपने वास्तविक स्वरूप को न भूलना, दृढ़चित्त और स्थिरभाव होना इत्यादि। इस नकद धर्म पर कहीं दो मत नहीं हो सकते। नकद धर्मवाले उन्नति करते हैं और वैभव को प्राप्त करते हैं। उधार धर्मवाले वाद–विवाद में उलझे रहते हैं।

केवल नकद धर्मवाले अभिमानी बन जाते हैं।

केवल उधार धर्मवाले स्वार्थी बन जाते हैं।

दोनों को यथायोग्य निभानेवाले इस लोक परलोक में सुखी होते हैं और सच्चे आस्तिक बनते हैं। यों समझो **बोना और खाना।**

बोई हुई चीज एक से अनेक हो जाती है। यह सुख का सामान बनाती है इसे "कर्म" कहते हैं।

खाना अनेक को एक कर देना, यह तृप्ति और शान्ति देती है। इसे धर्म कहते हैं।

४४. सफल सुखी जीवन के लिए प्राकृतिक और आत्मिक दोनों विद्याएं चाहिएं

प्रिय दर्शन, प्रिय पुत्री ! आशीर्वाद।

पत्र दस्ती पुत्री का लिखा मिला, धन्यवाद।

प्रिय पुत्री मेरा शुभाशीष चिरंजीव के साथ है और रहेगा भी। प्रभुदेव इसे सफल जीवन बनावें यही मेरा शुभाशीष है। उपदेश तो मैं उर्दू में लिख रहा हूं ठीक कर करा लेना। यह उपदेश बार–बार पढ़ने पर समझ में आवेगा..........के लिए बहुत जरूरी समझकर लिखा है।

उपदेश

वह मनुष्य बड़ा भाग्यशाली है जिसे अपनी उन्नति विकास की इच्छा तीव्र उत्पन्न हो। परन्तु यह है एक दीपक के समान, जैसे दीपक ज्वाला करके संसार के प्राणियों को लाभ पहुंचाता है और यश–मान पाता है पर अपने तले अंधेरा रखता है। भौतिक उन्नति में दो एब (दोष) हैं–

क) भौतिक विज्ञान जात–भौतिक उन्नति अनिश्चित होतीं है।

ख) इसमें विलास उत्पन्न होता है।

यह ज्ञान बड़े–बड़े विद्वान् सोचते हैं, मस्तिष्क से निकालते हैं। अतः प्रायः अनिश्चित होता है। प्रतिवर्ष थ्योरियां (Theories) बदली जाती हैं। ऊंचे दर्जे के विज्ञानियों में सदैव अनेक मत रहते हैं। कारण कि जिन सूक्ष्म पदार्थों से हमारा मस्तिष्क बना है उनसे भी अधिक

सूक्ष्म पदार्थ संसार में विद्यमान हैं। जैसे नेत्र की दृष्टि शक्ति से दृश्य पदार्थ सूक्ष्म हैं। ऐसे मस्तिष्क में सोचनेवाले पदार्थ भी अधिक सूक्ष्म हैं जो सोचे और समझे जा नहीं सकते।

संसार के आश्चर्यों को विज्ञान कभी नहीं मिटा सकता। बल्कि इन्हें अथाह और अगाध बना देता है। जैसे आंसू निकलने या पसीना बहने के छोटे–छोटे जीवन कार्य भी भौतिक तथा रासायनिक नियमों से पुष्ट नहीं हो सकते। परस्पर दो पदार्थ क्यों आकर्षित होते हैं और क्यों दो पदार्थ जुदा–जुदा होते हैं यह ज्ञात नहीं इसलिए इस असूल को जिसने समझ लिया कि दो दीपक अगर एक दूसरे के मुकाबले में जगाकर रख दिये जावें तो प्रकाश भी अधिक, लाभ भी अधिक प्राणियों को होगा और नीचे अन्धेरा भी कभी नहीं रहेगा। इसलिए इस असूल (नियम) के मुताबिक जो भौतिक विज्ञान (साईंस) में भी उन्नति करने की इच्छा रखता हो उसे आध्यात्मिक विज्ञान (आध्यात्मिक साईंस) में भी उन्नति करनी चाहिए ताकि उसके अन्दर और बाहर (अन्दर अपने लिए, अपनी आत्मा के लिए और बाहर संसार के प्राणियों के लिए) लाभ पहुंचे। धन ऐश्वर्य भी बढ़े अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्य का भी विकास और पारमार्थिक आत्मधन का भी विकास

हो जिससे इस लोक का सुख और मान नाम बढ़े और परलोक का सुख–शान्ति का भी धाम प्राप्त हो।

मैं अन्त में चिरंजीव..........जी को आशीर्वाद देता हुआ यह सलाह देता हूं कि माता–पिता की छत्र–छाया में इतना बड़ा धन खर्च किया लम्बा सफर करके अपनी भौतिक उन्नति के लिए परदेश में जा रहा है वहां प्रभु देव परमपिता परमात्मा की छत्र–छाया में अपनी आत्मोन्नति का साधन भी साथ–साथ करता रहे। ताकि पूर्ण रूप से उसकी बुद्धि और मन सुरक्षित और पवित्र रहकर जीवन सफल बनावें।

प्रभु करे यह मेरे थोड़े ही शब्द उसे अपील करें। हम सब नर–नारी उसे आशीर्वाद देते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह चिरंजीव.........को सफल जीवन अपने उद्देश्य में कामयाब करके रोशन करावें। *ओ३म् शम्।*

४५. दीपमाला महर्षि निर्वाण-दिवस

महर्षि दयानन्द महाराज को बोध तो कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को हुआ। संसार में प्रकृति नियम से दो ही पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। एक शुक्ल दूसरा कृष्ण पक्ष। शुक्ल पक्ष में अंधकारमयी रात्रि में प्रकाश चन्द्रमा का उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और कृष्ण पक्ष में प्रकाश घटता जाता है और अन्धकार बढ़ता जाता है। यहां तक कि कृष्ण पक्ष

की चौदस को पूर्ण अन्धकार होता है गोया चोर–लुटेरे, डाकुओं की दिलपसन्द रात्रि होती है यहां तक कि यदि तिथि में किसी गृहस्थी स्त्री के गर्भ स्थित हो जाए तो बच्चा नालायक, फासक, फाजर, लुच्चा लफंगा पैदा होगा जिसकी आयु–भर सुधरने की आशा नहीं हो सकती।

फिर प्रभुदेव ने अपार कृपा की कि कलियुग के ऐसे तम आच्छादित समय में एक बालक को जिसका नाम मूलशंकर था, ठीक चतुर्दशी तिथि शिवरात्रि की रात को आत्मबोध प्रदान किया जो ऋषि दयानन्द के नाम से विख्यात होकर संसार के अविद्या अज्ञान रूपी अन्धकार की समाप्ति करके दीपमाला अमावस की तिथि जो अन्धकार का अन्त करनेवाली रात्रि और प्रकाश को फिर से उदय करनेवाली बनाकर प्रकाश के पुञ्ज सूर्यनारायण के गर्भ में चन्द्रमा को पहुंचा देती है। उस तिथि को महर्षि दयानन्द का निर्वाण हुआ अपने विद्या और तपमय आत्मबल से अनेक सिद्धियों, विभूतियों को प्राप्त किया। जिनमें मुख्य सत् व्यवहार–पवित्र आचार निर्भयता और क्षमा की अनेक मिसालें मिलती हैं।

महाराज के जीवन की इब्तदा (आरम्भ) सत्य की खोज और अन्त क्षमा। अपने को विष देनेवाले दुष्ट सेवक को भी क्षमा करके जीवन–दान दिया।

महर्षि दयानन्द के अनेक कामों में चार काम मुख्य हैं– (१) वेद प्रचार (२) संसार का उपकार (३) मानव सुधार (४) पूजा निराकार।

महर्षि के मानसिक वीर्य (उत्साह) शारीरिक बल–वाणी में ओज, सेवा सहनशीलता में आत्म–तेज प्रकट होता अथवा झड़ता था। बलवीर्य तो पहलवानों में भी होता है परन्तु उनमें आत्मतेज नहीं होता। इसलिए महर्षि के मुकाबले पर जाने पर वह परास्त हो जाते और निस्तेज व शरमसार रह जाते हैं।

ओज तो बड़े–बड़े विद्वानों की वाणी में भी होता है। परन्तु आत्मतेज न होने से उस समय के बड़े–बड़े धुरंधर विद्वान् शास्त्री विद्या अभिमान से महाराज को हराने के लिए गए और उत्तर न दे सके। निस्तेज और शरमशार हुए।

क्रोध तो हकूमत में भी होता है। परन्तु सत्य न होने से पाप भ्रष्टाचार का नाश नहीं कर सकते हैं। परन्तु ऋषि दयानन्द महाराज ने अनेक महापापियों, दुराचारियों को अपने दर्शन मात्र से और मुख से निकले एक वाक्य से धर्मात्मा और पवित्र बना दिया।

सहनशील भी बहुत मिलेंगे मगर अपने स्वार्थ के लिए या विवशता से सहन करेंगे। पवित्रता न होने से

राग–द्वेष रहित न होने के कारण से क्षमाशील नहीं बन सकेंगे।

महर्षि दयानन्द की तस्वीर से पण्डित गुरुदत्त और वेश्या का जीवन परिवर्तन, ऋषि की तकरीर से मुन्शीराम जैसे नास्तिक स्वामी श्रद्धानन्द बने। महाराज की तहरीर ने सारे संसार को हिला दिया और मैक्समूलर जैसे यूरोप के विद्वान् उनकी तहरीर का सिक्का मान गए और तदबीर से एक साहूकार का इकलौटा बेटा नौजवान ज्वारी–शराबी कबाबी, व्यभिचारी था उसे अपनी तदबीर से सुधार दिया। तहरीर संसार–भर के लिए नित्य नया सबक देनेवाली है।

प्रभु करे, आज का दिवस हम सब ऋषि–भक्तों और अनुयायियों के लिए कोई विशेष गांठ बन्धवाने वाला बन जाए। जिनसे महर्षि गुरुवर के आशीर्वाद के पात्र बने रहें। ओ३म् शम्।

४६. बसन्त आजादी का सन्देश

आदरणीय माताओ, धर्मप्रेमियो ! मैं अधिक तो कुछ नहीं कहना चाहता आप हमेशा यज्ञ करनेवाली हो, यज्ञ के मर्म और रहस्य को जानती हो, आज पूर्णाहुति है। प्रभु की दया से यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हुआ, आज बसन्त पंचमी का त्यौहार है, बसन्त का पेशखैमा लग गया, वह ऋतुराज है।

बसन्त संदेश देता है कि मैं कैद में बन्द हुए प्राणियों को छुड़वाने आया हूं। सर्दी से लोग बन्द कर बैठे थे, द्वार बन्द करके बैठे थे। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े–मकौड़े सब शीत से ठिठुरते थे, बसन्त का आगमन हुआ, बस अन्त होगया– ठिठुरने का, सिकुड़ने का, बन्द होने का। अब बन्द द्वार खुल गए, अग्नि का ताप बुझा दिया गया, तन पर से कपड़ों का बोझ हटा दिया और खुले मैदान में मनुष्य पशु–पक्षी आगए, स्वतन्त्र होगए।

मनुष्य यज्ञ याग, पाठ पूजा, धर्म–कर्म इसलिए करता है कि बन्धनों से छुटकारा पा जावे। उसका गुर (मुक्ति) उपनिषत्कारों ने ब्रह्मज्ञानियों ने बताया कि पूर्व शरीर की त्रुटियां अब अगले जन्म के शरीर में न आवें दूसरे शरीर में जीव पुनः प्राणस्वरूप पवित्र, पापरहित संयम से रहकर श्रेष्ठ पुण्य कर्म कर सके और अगले जन्म में निष्पाप, निश्छल, निष्कपट पवित्र अन्तःकरण से अपनी आत्मा व परमात्मा का दर्शन करके आवागमन के चक्कर से छूट जाए। परमात्मा जिसे मुमुक्षु बनाना चाहते हैं उसको यज्ञमय जीवन बनाने का यज्ञों द्वारा अपना प्रसाद प्रदान करते हैं। यज्ञ तप दोनों साधन हैं पवित्रता के।

अन्तः व बाह्य शुद्धता, पवित्रतः संसार के सौभाग्य के लिए परम आवश्यक है।

बाह्य शुद्धता का अर्थ है शरीर, घर, ग्राम, गली, मुहल्ला, नगर, भूमि, अन्न, जल, जंगल, नदी, पर्वत, पवन, आकाश की शुद्धि।

अन्तः शुद्धता का अर्थ है मन, बुद्धि आदि सूक्ष्म शरीर की पवित्रता राग, द्वेष, ईर्ष्या से रहित होकर सत्य की साधना मनको पवित्र करती है। ज्ञान–विवेक से बुद्धि पवित्र होती है। संयम से इन्द्रियां, शिवसंकल्प से चित्त पवित्र होता है।

भगवान् करे आपकी भी आस्था बन जाए।

ओ३म् शम्।

ओ३म्

पूज्य गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

गायत्री	25.00	सन्ध्या सोपान	20.00
दृष्टान्त मुक्तावली	25.00	मन्त्र योग भाग 1 और 2	25.00
पृथिवी का स्वर्ग	10.00	मन्त्र योग भाग 3 और 4	24.00
पथ–प्रदर्शक	5.50	गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	12.00
चमकते अंगारे	4.00	वर घर की खोज व	
जीवन सुधार	6.00	योग युक्ति	6.00
मनोबल	16.00	विचार विचित्र	6.00
जीवन निर्माण	12.00	सेवाधर्म	6.00
जीवन यज्ञ	7.00	स्वप्न गुरु तथा	
सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं	10.00	देवों का शाप	4.00
गायत्री कुसुमाञ्जलि	2.00	निरकार साकार पूजा	3.00
बिखरे सुमन	5.00	एक अद्भुत किरण	4.00
साधना प्रचार	5.00	निर्गुण सगुण उपासना	8.00
अमृत के तीन घूंट	3.00	जीवन गाथा	5.00
आदर्श जीवन	5.00	दुर्लभ वस्तु	2.00
उत्तम जीवन	0.40	भागवान् गृहस्थी	3.00
आत्म चरित्र	9.50	संभलो	3.00
अध्यात्म सुधा भाग चार	25.00	हवन मन्त्र	3.00
कर्म भोग चक्र	26.00	डरो वह बड़ा जबरदस्त है	6.00
गृहस्थ सुधार	24.00	रहस्य की बातें	20.00
प्रभु का स्वरूप	16.00	सामवेद	50.00
यज्ञ रहस्य	26.00	यजुर्वेद	60.00

आर्यसमाज के नियम तथा उद्देश्य

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।